1/82

सोमसी

tharahkardu.in

सोमसी

हिमाचल कला-संस्कृति-भाषा अकादमी का त्रैमासिक मुख-पत्र

वर्ष 8 | जनवरी , 1982 | अंक 1

मुख्य सम्पादक :
अध्यक्ष अकादमी
शिव कुमार उपमन्यु

सम्पादक :
मौलू राम ठाकुर

सहयोगी :
सरोज सांख्यायन

आवरण :
ओम प्रकाश

२९

जनवरी, अप्रैल, जुलाई तथा अक्तूबर में प्रकाश्य ।

लेखक के विचारों तथा दिए गए तथ्यों से सम्पादक की सहमति आवश्यक नहीं ।

वार्षिक चन्दा–12 रु० एक प्रति–3 रु०

प्राप्ति स्थान :

हिमाचल कला-संस्कृति-भाषा अकादमी,
पीच ब्लाज्म काटेज, शिमला- *171002*

tharahkardu.in

सोमसी

जनवरी, 1982

विषयानुक्रमणिका

क्रम संख्या	लेख	लेखक	पृष्ठ
1.	सम्पादकीय		(i)
2.	अगम्य अर्चचित स्थल : त्रिगर्त कांगड़ा का शक्तिपीठ (बगलामुखी) बनखण्डी	–डॉ० विद्याधर शर्मा गुलेरी	1
3.	हिमाचल प्रदेश में पुरोहित और मौली का सम्बन्ध	–श्री दुर्गादत्त शास्त्री	4
4.	बिलासपुर क्षेत्र में प्रचलित शृंगार गीत-सांस्कृतिक विवेचन	–डॉ श्रीराम शर्मा	13
5.	चैत्र मास में रली पूजन	–श्री सुदर्शन डोगरा	26
6.	रियासत कुमारसैन प्रथम राजगद्दी	–श्री अमृत कुमार शर्मा	34
7.	कांगड़ी बोली में सर्वनाम का प्रयोग : समाज भाषा विज्ञान की दृष्टि से	–मधु बाला	38
8.	पहाड़ी चश्मों की सजावट : पनघट के पत्थर	–श्री अशोक जयरथ	43
9.	मास्ती कूजी	–श्री पन्ना लाल जोगटा	46
10.	ऐतिहासिक लोक कथा–सतवन्ती	–श्री प्रेम कुमार शर्मा	55
11.	अनोखे मोण मेले का परम्परागत इतिहास तथा महत्व	–श्री रूपकुमार शर्मा	59
12.	भटियात का चमत्कारी देवता नाग विणतरु	–श्री धर्मचन्द कौशल	64
13.	जेन आसटन (Jane Asten) के नारी पात्र	–डॉ आत्मा राम	67
14.	शोध प्रबन्ध का सार : कामायनी का आनन्दवाद	–डॉ नीलमणि उपाध्याय	70
14.	सारी गढ़	–श्री अमर पालशर	83

सम्पादकीय

सुप्रसिद्ध त्रिवेद-ब्रह्मा, विष्णु और महेश की सत्ता वैदिक त्रिवेद-अग्नि, इन्द्र और सूर्य की सत्ता से बहुत बाद की है। वैदिक युग में जो स्थान अग्नि, इन्द्र और सूर्य को प्राप्त था वह उस समय ब्रह्मा, विष्णु और महेश को प्राप्त नहीं था। वैदिक युग के उत्तरार्द्ध में सर्वप्रथम विष्णु का स्वरूप उभरने लगा था। परन्तु जिस प्रकार वे ब्राह्मण ग्रन्थों में अत्यन्य महत्वशाली हैं वैसे वे वैदिक काल में नहीं थे। तब उनका स्थान बहुत गौण था। ऋग्वेद की एक ऋचा में उन्हें बृहत् शरीर वाला युवा कुमार कहा गया है जिसका स्पष्ट अर्थ यह निकलता है कि वैदिक युग में विष्णु ने अपनी शक्ति दिखाना आरम्भ किया था। मनुष्यों के कल्याण के लिए विष्णु ने तीन पदों द्वारा पार्थिव लोक की परिक्रमा की है पृथ्वी लोक में अग्नि के रूप में, अन्तरिक्ष में विद्युत रूप में और आकाश में सूर्य रूप में। विष्णु पापों का नाशक और मुक्ति का दाता है। गरुड़ विष्णु का वाहन है, सर्पराज अनन्त इनका शयनस्थल है, परन्तु जागरणावस्था में वे शेषनाग पर बैठते हैं। विष्णु के चार हाथ हैं जिनसे वे चारों दिशाओं की रक्षा करते हैं।

ब्रह्मा को हिरण्यगर्भ अर्थात सोने के अण्डे से उत्पन्न हुआ माना जाता है। वे सृष्टि के रचियता हैं। सामवेदीय छान्दोग्योपनिषद के एक मन्त्र में कहा गया है, "सर्व खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति शान्त उपासीत" अर्थात् यह सारा जगत ब्रह्म है। यह ब्रह्म से ही उत्पन्न हुआ है, ब्रह्म में ही विलीन हो गया और ब्रह्म में ही अवस्थित है।। ब्रह्मा आदिकर्त्ता प्रजापति हैं। चारों वर्ण और चारों वेद उन्हीं से प्रादुर्भूत हुए हैं। ब्रह्मा की दो अवस्थाएं हैं। मनन्वतर और प्रलय। मनन्वंतरावस्था में जब वे जागे होते हैं तो सारा विश्व पूर्णशक्ति से प्रफुल्लित तथा विकसित होता है। प्रलय की स्थिति में सारा संसार अपने मूल कारण प्रकृति में सर्वथा लीन हो जाता है। परन्तु सब कुछ नष्ट होने पर भी ब्रह्मा के जागते ही पुनः जीवत और विकसित होता है। त्रिमूर्तियों में शिव तीसरे देवता हैं। यह सृष्टि संहारक हैं। इसलिए इनको रुद्र भी कहते हैं। वेदों में वे इसी नाम से प्रतिष्ठित हैं। महेश और महादेव इनके अन्य नाम हैं।

पौराणिक युग में त्रिदेव ब्रह्मा, विष्णु और महेश का सर्वाधिक महत्व रहा है। उन्हें सृष्टि के उद्भव और प्रलय का मुख्य कारण माना जाता है। ब्रह्मा सृष्टि के उत्पादक, विष्णु उसके पालक और शिव उसके संहारक हैं। इनमें से किसका स्थान सर्वोच्च है, इस प्रश्न पर पौराणिक युग में ही विवाद खड़ा हुआ था। जन्म देने या संहार करने की अपेक्षा पालन-पोषण का कार्य निश्चित रूप से अधिक महत्वपूर्ण है और इस दृष्टि से विष्णु को पौराणिक युग में ही सर्वोच्च स्थान प्राप्त हो चुका था। ऐतरेय ब्राह्मण तथा शतपथ ब्राह्मण के अनुसार विष्णु सर्वोच्च देव हैं। परोपकार और लोकहित विष्णु के प्रमुख गुण हैं। वे अपने भक्त को कभी निराश नहीं करते। भगवत में कहा गया है कि "अहं भक्तपराधीनों ह्यस्वतन्त्र इव द्विज साधुभिर्ग्रस्तहृदयो भक्तैर्भक्तजनप्रिय" अर्थात् मैं भक्त के अधीन हूं। पूर्णतया परतन्त्र हुं। साधु भक्तों के द्वारा मेरा हृदय स्वीकृत है। भक्त मेरे प्रिय हैं। विष्णु अनेक बार देवताओं की सुरक्षा के लिए आए हैं, जब दूसरे देवों ने अपनी असमर्थता दिखाई थी। वायुपुराण के अनुसार प्रलयकाल में केवल एकदेव विष्णु की सत्ता रहती है। परन्तु मूल में तीनों का स्थान समान है। विष्णु-पुराण के अनुसार भगवान ब्रह्मा रूप से विश्व की रचना करते हैं, विष्णु रूप से पालन करते हैं और शिव रूप में संहार करते हैं। इसी में उनकी एकात्मकता प्रकट होती है। भागवत-पुराण के अनुसार ब्रह्मा और शिव दोनों

ही विष्णु में विराजमान हैं और इस तरह उनका एकत्व है। तीनों देवों की महानता के प्रसंग में पद्मपुराण में कहा गया है :

एकमूर्तिस्त्रयो देवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः।
त्रयाणामन्तरम नास्ति गुणभेदः प्रकीर्तिताः।

इस प्रकार पुराणों के अनुसार ब्रह्मा, विष्णु और शिव में परस्पर तादात्मय और एकता की भावना है। पौराणिक धर्म में मूर्ति पूजा और मन्दिर निर्माण का प्रचलन विशेष रूप में बढ़ा। धार्मिक प्रवृतियों के लोग मूर्ति स्थापना और मन्दिरों के निर्माण में धन सम्पति लगाना अपना गौरव समझते थे।

आर्य लोगों में अनेक गुण थे। इसीलिए वे संसार में फैल गए। उनमें सबसे बड़ा गुण सहनशीलता और सामंजस्य की भावना थी। जहां वे अपने धर्म को फैलाने के प्रयत्न करते थे, वहां उन्होंने अन्य धर्मों के गुणों को भी बड़ी उदारता से अपनाया है। अत: उनका वास्तविक धर्म आर्य-अनार्य धर्मों के गुणों का समिश्रण है। यह संश्लिष्टता देव-भावना के क्षेत्र में भी परिलक्षित होती है। विद्वानों का मत है कि आर्यों के त्रिदेव में से शिव निश्चित रूप से अनार्य जातियों के देवता हैं, जिन्हें आर्यों ने अपनाया है। यही कारण है कि जहां ऋग्वेद के अनुसार आर्यों के 33 या 3336 देवता थे। भारत में 33 करोड़ देवता कहे गये हैं।

हिमाचल प्रदेश में भी आर्य और अनार्य देवताओं का समागम है। मनुष्य की सामान्य प्रवृति के अनुसार हिमाचल प्रदेश में भी देव-भावना प्राकृतिक दृश्यों से आरम्भ हुई है। सूर्य इसका प्रथम स्तम्भ है। सूर्य उदय के समय लोग हाथ जोड़कर उसका अभिनन्दन करते हैं। सूर्य अस्त होने लगता है तो पुनः उसे नमस्कार करते हुए रात के सकुशल बीतने की कामना करते हैं। सूर्य की मूर्तियां भी स्थापित होती हैं और उनकी पूजा होती रही है। सुन्दर नगर में सूरज कुण्ड सूर्य पूजा का विशिष्ट उदाहरण है। यहां अष्टधातु की सूर्य की मूर्ति है। सिरमौर जिला में यमुना के किनारे से एक सूर्य मूर्ति प्राप्त हुई है। जो अब भूरीसिंह म्यूजियम चम्बा में है। सिग्मौरी ताल के टीले पर बालु पत्थर से बनी सूर्य की स्थित मूर्ति है जो हल्के भूरे रंग की है। यह मूर्ति चार भुजाओं वाली है नीरथ में प्रसिद्ध सूर्य मन्दिर सूर्य पूजा का उत्कृष्ट उदाहरण है। यहां सूर्य की तीन फुट ऊंची पत्थर की मूर्ति है। जिसके नीचे सात घोड़े सूर्य की किरणों की शक्ति का संकेत देते हैं। लगता है हिमाचल में कुल्लू का क्षेत्र सूर्य पूजा का केन्द्र रहा है। कुल्लू में बजौरा स्थान से दो सूर्य की मूर्तियां प्राप्त हुई हैं। इनमें से एक हिमाचल राज्य संग्रहालय शिमला में है यह भूरे पत्थर की बनी है। और चौथी सदी ईसवी की बताई जाती है। दूसरी मूर्ति 504 सैं०मी० ऊंची पीतल की है। जो अब क्लीवलेण्ड म्यूजियम आफ आर्ट (अमेरिका) में है। सूर्य की तरह ही चन्द्रमा और नक्षत्र-तारों की पूजा होती है। परन्तु जहां सूर्य ने अपने प्राकृतिक रूप से आगे निकल कर मूर्ति रूप और मन्दिर में प्रवेश किया है, वहां चन्द्रमा नक्षत्र-तारों के मन्दिर आदि हिमाचल में देखने में नहीं आते हैं। पूर्णमासी और अमावस्या को चन्द्रमा की और विभिन्न दिनों या तिथियों में नक्षत्र-तारों की पूजा होती है। यक्ष, दानव, असुर, और पिशाच जाति या प्रवृति के देवता प्राय: कृष्ण पक्ष में मन्दिरों से निकलकर मेले आयोजित करते हैं। आर्य देव, ऋषि, सुर, मुनि देवता केवल शुक्ल पक्ष में ही पूजे जाते हैं। महीनों में भी भादों, पौष, माघ को काला महीना कहा जाता है। इन महीनों में केवल पिशाच प्रकृति के देवता ही पूजे जाते हैं। शेष देवता इन महीनों में मन्दिरों से बाहर नहीं निकलते न उनके मेले-अनुष्ठान इन दिनों होते हैं।

—एम० आर० ठाकुर

अगम्य अर्चाचित स्थल

त्रिगर्त कांगड़ा का शक्तिपीठ (बगलामुखी) बनखण्डी

–डॉ० विद्याधर शर्मा गुलेरी

हिमाचल प्रदेश के कांगड़ा क्षेत्र में शक्तिपीठों की अधिकता एवं घर-घर में मान्य देवीपूजा की व्यापकता प्रचार प्रसार को देखते हुए स्वयंसिद्ध है कि त्रिगर्त प्रान्त में देवी पूजा अनादि काल से व्यवहार में रही है। पुरातत्व विभाग के प्रयत्नों से जो अनेक मन्दिरों के ध्वसांवशेष के परिणाम सामने आए हैं वे ऐतिहासिक, भौगोलिक एवं सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में शाक्त मतावलम्बी विचारधारा को नग्नप्राय करते हैं। इस क्षेत्र में शक्तिपूजा गुप्त काल से प्रचलित हुई थी जिसका पूर्व मध्य काल में यहां अधिक विकास हुआ। कांगड़ा के किले में निर्मित मन्दिर में अम्बिका देवी की मूर्ति की प्राप्ति, हरिपुर प्राप्त दशमुखी देवी की काष्ठ प्रतिमा तथा कोट कांगड़ा के भवानी मन्दिर के अभिलेख तथा प्राच्य दुर्लभ प्राच्य अवशेष कांगड़ा में देवीपूजा की प्राचीनता की ओर सहज इगित करते हैं।

भौगोलिक अवस्थिति :

देहरा से १३ किलोमीटर की दूरी पर तथा कांगड़ा से देहरा मार्ग पर कांगड़ा से २५ किलोमीटर दूर पुरानी बनखण्डी नामक स्थान में कांगड़ा का सम्भवत: सर्वाधिक प्राचीन महत्वपूर्ण शाक्त केन्द्र एवम् साधना स्थल है। होश्यारपुर से धर्मशाला, देहरा, कांगड़ा वरास्ता बनखण्डी यह अर्चाचित स्थान पड़ता है। स्थापत्य-कला, प्राचीनता की दृष्टि से सर्वोच्च होता हुआ भी यह स्थान साधकों के लिए तो अपरिचित नहीं परन्तु आधुनिक भक्त जो थोड़े समय और चन्द सिक्कों से धर्म सुख लूटते हैं उनके लिए श्रम-साध्य यात्रा के कारण यहां ज्वालाजी, चिन्तपुर्नी, ब्रजेश्वरी तथा चामुण्डा के शक्ति केन्द्रों की तरह भीड़ नहीं रहती। बाहर प्रान्तों के यात्री अज्ञानवश चिन्तपुर्नी से देहरा फिर ज्वालामुखी और चामुण्डा से देवी पूजा परिक्रमा पूर्ण मानते हैं।

प्राचीनता एवम् ऐतिहासिक विशेषता :

मैं इस स्थान पर जब जब गया मुझे दंग रह जाना पड़ा। मुख्य मार्ग जहां पर कि बनखण्डी का नया बस स्टैण्ड भी बन रहा है से नीचे उतर कर भव्य स्थापत्य कला का नमूना यह मन्दिर पूर्ण शास्त्रीय पद्धति से निर्मित वास्तुकला का विचित्र नमूना है। मन्दिर के परिसर में अत्यन्त ही प्राचीन एक विशाल वट वृक्ष है। इस वृक्ष के बारे में भी रामचन्द्र द्वारा सीता के हाथों लगवाए जाने की किम्बदन्ती तो प्रसिद्ध है ही परन्तु इस विस्तृताकार वृक्ष के मूल तने का

न होना इसकी प्राचीनता को दिखाता है। बगलामुखी के साथ के शिव मन्दिर में स्थापित शिवलिङ्ग का आकार साढ़े चार फुट ऊंचा तथा तीन फुट चौड़ा है। यह भी प्राचीन, दीर्घकाय, विस्तृत व स्थूलाकार है।

माना जाता है कि इसकी (बगलामुखी) उपासना द्वापर युग से चली आ रही है। लंकेश रावण और मेघनाथ के समय का वर्णन बगलामुखी तंत्रम् में भी प्रतिपादित हुआ है यथा—

लङ्कापति ध्वंसकरी लङ्केश रिपुवन्दिता। लङ्कानाथ कुलहरा महारावणहारिणि।
बगलामुखी तंत्रम् (शाक्त प्रमोद) पृष्ठ ३२०।

स्थान उद्भव व जीर्णोद्धार विषयक मान्याताएं :

बनखण्डी स्थान के उद्भव का मूल कारण बनखण्डा अर्थात् बन में खण्डे (चिमटा या त्रिशूल) का विकृत अर्थागम है जोकि सम्प्रति 'बनखण्डी' नाम से सर्वप्रचलित तथा सर्वप्रसिद्ध है। बनखण्डी के बगलामुखी की स्थापना का पुनः जीर्णोद्धार बाबा सन्तगिरि व उसके शिष्य सन्तोषगिरि ने किया था। बनखण्डी में ५० समाधियां इन नागा सम्प्रदाय के सिद्धों की हैं जो आजीवन अविवाहित रहे व परम्परा से यहीं दफनाए जाते रहे। गोसांई गिरि जोकि स्त्रीद्रोही थे कि वसीयत के अनुसार आज भी स्त्रियों को इन समाधियों तक पहुंचने या पुष्पादि से छूने का अधिकार नहीं।

बगलामुखी माता के इस मन्दिर में जल स्रोतों के व बहुविध निरीक्षण से मुझे कई बार यह अनुभव हुआ कि कांगड़ा में शाक्तोपासना तथा देवीपूजन के लिए यह स्थान सर्वथा उपयुक्त, शास्त्रीय लक्षणों से युक्त तथा प्रयोज्य है।

बगलामुखी का रहस्य :

यह अर्थ नितान्त शास्त्रीय गोपनीय व अद्भुत है। श्री बगला ब्रह्मास्य महाविद्या है जोकि अति गोपनीय अहस्तान्तरणीय और सुरक्षित रखी जाने वाली विद्या है। **गोपनीय प्रयत्नतः। गोपयेत् सर्वदा युक्त ! गुप्ता वीर्यवती भवेत्।** (सांख्यायन तन्त्र प० ३४, १६ पृष्ठ ८६, ४।) शाक्तप्रमोद, क्रमबीजरत्नावली व पीताम्बरोपनिषद् में विशेष व्याख्याएं द्रष्टव्य हैं। यह प्रयोगकारी भी है। मोक्ष के चक्कर को छोड़ कर अभिचारों यथा प्रयोजन, मारण, उच्चाटण वशीकरण, अनिष्ट ग्रहों की शान्ति, धनप्राप्ति, प्रेमफल और मुकदमे के लिए यहां कलकत्ता, बंगाल के साधक भी श्रद्धावश भटकते देखे जा सकते हैं। महाराजा जम्मू परिवार की इष्टदेवी, कटोचवंश, सूद परिवारों तथा गुलेर क्षेत्र के वासियों की भी कुलदेवी है। किन्तु क्रमबीज रत्नावली स्तोत्र के अर्थों में यह शुद्ध प्रयोग विद्या नहीं अपितु मोक्षदायिनी है। वल्गा का अपभ्रंश परिवर्तित रूप बगला है जिसका अर्थ है लगाम। बगला स्तम्भन शक्ति है विशेषतः वाक स्तम्भिनी है। बगलामुखी माता को श्रद्धालु भक्त बगलों हंसों से जोड़ देते है यह अज्ञानमात्र है। बगला को शास्त्रों में पीताम्बरा बगलापीत स्वरूपीणि पीतवसना (पीले वस्त्रों की) कहा गया है। अतएव पीले रंग के वस्त्रों रंगों, साजसज्जा का बनखण्डी मन्दिर में भी बाहुल्य है। पीली हल्दी की माला देते हुए महन्त देवीदास जी ने मुझे बताया कि शिवलिंग स्वयं यहां प्रकट हुआ था सारे हिमाचल प्रदेश में ऐसा लक्षणयुक्त प्राच्य शिवलिंग अन्यत्र नहीं है। महन्त देवीदास बकारे बरूणा देवी, गकारे सिद्धिदा स्मृता। लकारे

पृथ्वी चैव चैतन्या च प्रकीर्तिता का बहुत जाप करने लगे पर गम्भीर साधना के लक्षणों से दूर थे। जिसके कारण उन्होंने मुझे अपना नया-नया जपना बताया।

स्थान महत्ता :

इस बगलामुखी मन्दिर की अवस्थिति पक्की सड़क यद्यपि पृथ्वी के सामान्य धरातल से नीचे गहराई में जाकर है तथापि विशाल वटवृक्ष की छाया' जलाशय (सक्षम जलधि) तथा शांत धार्मिक वातावरण के कारण यह स्थान अत्यन्त पवित्र सुखद एवं आकर्षक है।

कांगड़ा के अन्य शक्तिपीठों से जो प्रमुख विशेषता इस स्थान को अधिक महत्वपूर्ण सिद्ध करती है वह यहां कि भौगोलिक स्थिति, शान्तवातावरण एवं इसकी दाक्षिणात्य स्थापत्यपरक वास्तु शैली है। शिवालय के साथ ही देवी शक्ति की विद्यमानता शाक्त शैवोपासकों को एक ही स्थान पर सभी सुविधाएं प्रदान किए है। बनखण्डी का बगलामुखी देवी पूजास्थल इस प्रकार शैवशाक्त साधकों के लिए वांच्छित निर्जन, नीरव, शांत पवित्र साधनस्थल होने के कारण यह शक्तिपीठ कांगड़ा का प्रमुख उत्कृष्ट देवी पूजा स्थल है।

गुलेर, जिला कांगड़ा
१७६०२८ (हि०प्र०)

●★●

हिमाचल प्रदेश में पुरोहित और मौली का सम्बन्ध

—दुर्गादत्त शास्त्री

हिमाचल प्रदेश में पुरोहित और मौली (डोरी) का परस्पर अटूट सम्बन्ध है। यह दोनों हमारी संस्कृति के पूरक हैं। हमारा कोई ऐसा शुभ संस्कार नहीं जिसमें पुरोहित को न बुलाया जाता हो और कोई ऐसा पुरोहित नहीं जो मौली के बिना शुभ संस्कार को करवा सकता हो। पुरोहित चेतन है और डोरी अचेतन है। इस प्रकार चेतन अचेतन का और अचेतन चेतन का पूरक है। चेतन अचेतन का यह सम्बन्ध बहुत मन भावना सुहावना एवं आकर्षक है। जड़ चेतन का यह संयोग हमारी संस्कृति की देन है। जैसे प्रकृति पुरुष के संयोग से सृष्टि का प्रादुर्भाव माना जाता है इसी प्रकार पुरोहित और मौली के संयोग से हमारे संस्कार जन्मते एवं पनपते आए हैं।

पुरोहित शब्द का अर्थ है—'पुरो धीयते, इति पुरोहितः'। अर्थात् संस्कारों में जिस को सबसे आगे बैठाया जाता है वह पुरोहित होता है। पुरोहित की परम्परा बहुत ही प्राचीन है। वेदों में पुरोहित का विवरण मिलता है :

अग्निमीले पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजं होतारं रत्नधातमम्।
॥ ऋ० मं० ७ सू० १ मंत्र १ ॥

पुरोहित को कदाचित् ऋत्विज और याजक भी कहा जाता है। प्राचीनकाल के राजा-महाराजा केवल धार्मिक कृत्यों में ही नहीं अपितु प्रशासनिक कामों में भी अपने पुरोहितों की सम्मति लेते थे। वशिष्ट, विश्वामित्र, याज्ञवल्क, अंगिरा, भारद्वाज आदि तत्कालीन महाराजाओं के प्रसिद्ध पुरोहित हुए हैं। यह पुरोहित कभी आपस में मिलकर भी राजा-महाराजाओं के लिए मर्यादाएं निश्चित करते थे। परन्तु धार्मिक कृत्य या संस्कार इनकी मुख्य भूमिका होती थी। पुरोहित के लिए गुरू शब्द का प्रयोग भी किया जाता था। प्राचीनकाल के इन पुरोहितों में इतना बुद्धि बल और आत्मशक्ति थी कि यह जो कुछ कह देते थे वह पूरा हो ही जाता था। महर्षि वशिष्ट के द्वारा कराए गए पुत्रेष्टि यज्ञ के प्रभाव से महाराजा दशरथ को सन्तान की प्राप्ति हुई थी। विश्वामित्र जी की सम्मति पर महाराजा दशरथ ने राम और लक्ष्मण को असुरों के संहारार्थ उसके साथ बन भेज दिया था। संस्कारों में यह राजा-महाराजाओं के सर्वे-सर्वा होते थे और उस काल से लेकर यह परम्परा अबाधगति से चली आ रही है।

संस्कार पुरोहित के बिना हो ही नहीं सकते। यह ही यजमानों के घर संस्कारों को सम्पन्न करवाते हैं। पुरोहित दो प्रकार के होते हैं—एक कुल पुरोहित और दूसरे भाड़े के पुरोहित। कुल-

पुरोहित वह होते हैं जो वंश परम्परा से यजमानों के घर संस्कार करवाते हैं। कुल पुरोहित गोत्र के आधार पर माने जाते हैं। संभवतः प्राचीन काल में जो ऋषि किसी कुल का गुरू होता था, परम्परा से वही उस कुल का पुरोहित बन गया और यह परम्परा अब तक उसी ढंग से चली आ आ रही है। कुल पुरोहित का लोग बहुत आदर करते हैं। अपने विविध प्रकार के कार्यकलाप में उनकी आज्ञा लेते हैं। उनको दान देना बड़ा पुण्य समझा जाता है। कुल पुरोहित का बच्चा भी हो तो उसका भी सम्मान किया जाता है और उसे पूज्य समझा जाता है।

भाड़े के पुरोहित वह होते हैं जो वंश परम्परा से यजमान के पुरोहित तो नहीं होते हैं परन्तु पढ़े लिखे होने के कारण लोगों के घर में संस्कार करवा देते हैं और उन्हें दक्षिणा मिल जाती है। इन्हें 'पाधा' की संज्ञा दी जाती है। पाधा शब्द पा और धा धातु से बना है। पा का अर्थ है रक्षा करना और धा का अर्थ है धारण करना। जो संस्कारों के रक्षणार्थ विद्या को धारण करता है वही पाधा होता है। पाधा लोगों का भी पुरोहित से कम महत्व नहीं होता है। लोगों में इनकी अच्छी प्रतिष्ठा देखने को मिलती है। कोई पाधा कर्मकाण्ड में जितना विद्वान हो उतना ही अधिक लोगों में उसका सम्मान होता है।

अब मौली (डोरी) को लेते हैं। मौली तद्‌भव शब्द है यह मूल प्रतिष्ठायां धातु से बना है। वास्तव में ही मौली को बड़ी प्रतिष्ठा प्राप्त होती है। यह देवी-देवताओं के सिर पर चढ़ाई जाती है और राजा-महाराजा तथा रानियों के गले का हार बनती है। दुल्हा मौली से सजता है और दुल्हन का तो श्रृंगार ही मौली से किया जाता है। इसकी व्युत्पत्ति मल-धारणो धातु से भी संगत बैठती है। 'मल्यते धार्यते इति मौली'। अर्थात् जो शुभ कार्य में मंगल के चिन्ह के रूप में धारण की जाती है वह मौली कहलाती है। ह्रस्वान्त मौली शब्द से शिखा, मुकुट एवं बन्धे हुए केशों का बोध होता है। जैसे—'न चूड़ा किरीटमथो केशाः संयताः मौलयस्त्रयः'। निश्चय ही मौली का शिखा, मुकुट और बन्धे हुए केशों से घनिष्ठ सम्बन्ध दीखता है! स्त्रियां तो केशों को बांधती ही मौली से हैं जिसे वह सगुण, सौभाग्य एवं सौंदर्य का प्रतीक समझती हैं। पर्वतीय क्षेत्र में मौली के लिए डोरी शब्द रूढ़ है और डोरी कहने से मौली का ही बोध होता है। जब कोई शुभ कार्य निश्चित होता है तो सबसे पहले महिलाओं को डोरी बनाने की ही चिन्ता होती है। अच्छे मुहुर्त में रूई खरीदी जाती है। उसे सुहागिन स्त्रियों से कताया जाता है और उस सूत्र से फिर डोरियां बनाकर उन्हें लाल रंग में रंगा जाता है। फिर इनका शुभ संस्कारों में प्रयोग किया जाता है। दान दी जाने वाली वस्तु के गले में डोरी अवश्य बांधी जाती है। चाहे कोई हाथी का दान करे या गौ का दान करे, डोरी उनके गले में भी डाली जाती है। दान में दी जाने वाली अचेतन वस्तुओं को भी डोरी बांधी जाती है। घड़ा हो, गिलास हो या लोटा हो अथवा और कोई वस्तु हो जब दान में दी जाएगी तो उसे आप डोरी से बन्धा पाएंगे। ज्वालामुखी, अचिन्त्यपुरनी, कांगड़ा, नयना देवी और बैष्णव देवी के यात्रियों के गले में डोरी की माला पहनी हुई देखी जा सकती है। डोरी हमारी संस्कृति की प्रतीक है हमारे धार्मिक कृत्यों व शुभ संस्कारों में डोरी का पूर्ण प्रभुत्व देखने को मिलता है।

हमारे लोकगीतों में पुरोहित और डोरी की गूंज कानों को तृप्त करती है। पुरोहित को तो लोकगीतों में गाली का भाग भी मिलता है जबकि डोरी की महिमा ही गाई जाती है। अब

हिमाचल विशेष कर कांगड़ा में गाए जाने वाले लोकगीतों के माध्यम से पुरोहित और डोरी (मौली) के महत्व को दर्शाना होगा । पहले हम पुरोहित को ही लेते हैं ।

बहन के घर में जब कोई शुभ कार्य होता है तो वह अपने भाई को लक्ष्य करके कहती है :

कैंह तां औयां भाइया बडडें समानें, कैंह तां रियां घर आवणें ।
मैं तां आया भैंणे बडडें समानें, गउ अड़ी तेरें फलियें ।
फलिये पुटासां मैं गउ लंघासां, आई रियां घर भैंनड़ा ।
पैंहलें भनायां साडे कुले दे पुरोहते, पुरोत-परत्याणी दो जणें ।
फिरी भनायां साडिया सस्सू सुपुत्तिया, सस्स तां सौहरा दो जणें ।
फिरी भनायां साडिया ननदा लड़किया, ननद-ननदोई दो जणें ।
फिरी भनाया साडिया बडिया जठाणियां, जेठ-जठाणी दो जणें ।

इस लोकगीत में बहन भाई से प्रार्थना करती है कि वह उसके घर आकर सर्वप्रथम उनके कुल पुरोहित का आदर करे । तदनन्तर ही उसके ससुराल के सदस्यों का सम्मान किया जाना चाहिए ।

विवाह से पूर्व शान्ति होम में महिलाएं इस प्रकार गाती हैं :

सुर्गे ते उतरो देवता, सांदी आई बहो ।
साडड़ा औंअण ना होए, कुले दा बुरोत बौए ।
सुर्गे ते उतरो देवता, सांदी आई बहो ।
साडड़ा औंअण ना होए, लाड़े बौओ बौए ।
सुर्गे ते उतरो देवता, सांदी आई बौओ ।
साडड़ा औंअण ना होए, लाड़े ताया बौए ।

इस प्रकार इस लोकगीत में भी सर्वप्रथम पुरोहित का ही नाम आता है ।

फिर सांद में ही महिलाएं रुख बदलती है और पाधा पर मीठी गालियों की बौछार होने लगती है :

सांद कराई दे पाधा जी, सांद कराई दे पाधा जी ।
गरी घुल्ली घरें पुजाई लै पाधा जी, सांद कराई दे पाधा जी ।
हालिया पा कुनालिया पा औंदा - जांदा घरें पुजा ।
जजमानणिये इन्हां गल्लां पत जांदी प्रतीत जांदी ओं स्वस्ति स्वाहा ।
सांद कराई दे पाधा जी, सांद कराई दे पाधा जी ।
चौल घुल्ले, मांह घुल्ले, धोतिया दें लड़ घरें पुजा ।
जजमानणिये इन्हां गल्लां पत जांदी प्रतीत जांदी ओं स्वस्ति स्वाहा ।
साँद कराई दे पाधा जी, साँद कराई दे पाधा जी ।

पाधा जी इस व्यङ्ग्य का पूर्ण रसास्वाद लेते हैं । फिर एक अन्य भावपूर्ण गीत जिसमें पाधा–पुरोहित को याद किया जाता है :

जमना ते पार जी पाधा, कोई गौआ चुगंदी ऐ।
ओथे ते गोआ मंगायो, सांदी चौंका पुआयो ऐ।
जमना ते पार जी पाधा, कोई मैंदा बकंदा ऐ।
ओथे ते मैंदा मंगायो, सांदी लिखणे दी करयो ऐ।
जमना ते पार जी पाधा, कोई चौल़ बकंदे ऐ।
ओथे ते चौल़ मंगायो, सांदी कोठे रची-मिची भरयो जी।
जमना ते पार जी पाधा, कोई दूबा दा डालू ऐ।
ओथे ते दुब मंगायो, सांदी मंगल मनायो ऐ।

इस लोकगीत में शान्तिहोम के प्रारम्भ से लेकर अन्त तक सभी वस्तुओं का नाम लिया जाता है और पाधा की प्रत्येक वस्तु के साथ आवृति होती है ।

अब डोरी को लेते हैं । महिलाओं को डोरी (मौली) से विशेष स्नेह है । यह उनके सौभाग्य का चिन्ह है । इसे धारण कर वह अपने को गौरवमय समझती है और प्रसन्नता में फूली नहीं समाती है । डोरी के प्रति इसी अस्था के कारण ही उन के पास इससे सम्बन्धित लोकगीतों का कोष भरा पड़ा है ।

सर्वप्रथम जब कन्या की सगाई हो जाती है तो महिलाएं सुहाग गाती है और डोरी को याद किया जाता है :

बेटी सुहाग मांगण बौए दें गई ऐ।
बेटिये हाथ मैंहदी, सीस डोरी, बांईं चूड़ा लाल।
बेटी दें छोड़ी लंका ते पार सुहाग तैंनूं राम देवेगा।
बेटी सुहाग मांगण ताए दें गई ऐ।
बेटिये हाथ मैंहदी, सीस डोरी, बांईं चूड़ा लाल।
बेटी दें छोड़ी लंका ते पार सुहाग तैंनूं राम देवेगा।

सिर में डोरी का बांधा जाना ही सौभाग्य का चिन्ह है फिर दूसरे लोकगीत में :

सूहिये डोरिये रोंगलिये, घर बार गई ऐ।
किनी सैं डोरी रंगाई ऐ, घर बार गई ऐ।
ब्रह्मा सैं डोरी रंगाई ऐ, घर बार गई ऐ।
सुरसुतिया सिर लाई ऐ, घर बार गई ऐ।
विष्णु सैं डोरी रंगाई ऐ, घर बार गई ऐ।

लक्षमियां सिर लाई ऐ, घर बार गई ऐ।
शिवजी सै डोरी रंगाई ऐ, घर बार गई ऐ।
पार्वतिया सिर लाई ऐ, घर बार गई ऐ।

इस प्रकार डोरी का महत्व केवल मनुष्यों के लिए ही नहीं अपितु देवताओं के लिए भी यह एतदवस्थ ही रहा है।

डोरी वैसे तो लाल रंग की होती है परन्तु उसे अधिक सुन्दर और आकर्षक बनाने के लिए लाल रंग के साथ अन्य रंगों का भी प्रयोग किया जाता है। एक गृहणी नौ रंग डोरी के लिए किस प्रकार अपने भ्राता को विवश करती है और वह किस प्रकार अपनी विवशता प्रकट करता है। यह सब कुछ निम्न भावपूर्ण लोक-गीत में प्रकट हो जाता है :

भर्ता : देखो लोको मेरयो भाइयो एह तां पांदी पुठियां अड़ियां।
पत्नी : एहो अड़ियां एहो घड़ियां मैं तां लैणी नौ रंग डोरी ऐ।
भर्ता : अठ शहर सोलह नगर ढूंढे ना ई मिलदी नौ रंग डोरी ऐ।
पत्नी : एहो अड़ियां एहो घड़ियां मैं तां लैणी नौ रंग कांघी ऐ।
भर्ता : अठ शहर सोलह नगर धूंढे ना ई मिलदी नौ रंग कांघी ऐ।

इस लोक-गीत को प्रायः तब गाया जाता है जब किसी भर्ता की पत्नी ने पुत्र को जन्म दिया हो। उसे पुत्र को जन्म देने का गौरव प्राप्त होता है और वह अपने पति को परीक्षा में डालती है कि वह उसकी मनचाही वस्तुओं को कैसे और कहां से लाकर देता है। इसी ढंग का एक अन्य लोक-गीत :

कंहदे तांई रुसी नालो, क्या लैणा ऐ – लैणा ऐ।
डोरिया तांई रुसी डोला मैं लैणी ऐ – लैणी ऐ।
जांगा नौंए शहर मिजे मैं डोरी लै औंघा नी, क्या लैणा ऐ – लैणा ऐ।

इस लोक-गीत को भी पुत्र प्राप्ति के अवसर पर ही गया जाता है। अपने पति के लिए पुत्र को जन्म देकर पत्नी अपने सौभाग्य पर इठलाती है। यही अवसर उसे अपने पति से अभीष्ट वस्तु पाने के लिए रुठने का होता है। यहां 'नाजो' शब्द का पत्नी के लिए और 'डोला' शब्द का पति के लिए प्रयोग है। क्योंकि डोरी नारी का सौभाग्य चिन्ह है इस लिए महिलाओं में इसका इतना आदर और सम्मान है कि कई बार वह इसके नाम पर भावविभोर होकर प्रसन्नता के दूर क्षितिज तक पहुंच जाती हैं। देखिए निम्न लोक-गीत :

डोरो डोरी आखदे, डोरी हट-बाजार।
लाड़िया दी माई वेच के असां डोरी लैणी मंगा।
छाबा छाबा जी डोरिये रौंगलिये—
छाबा छाबा जी शहर बकंदड़िये।

इस प्रकार हमारे लोक गीतों में डोरी की गूंज दूर-दूर तक सुनाई देती है और हमारी संस्कृति में जो डोरी का योगदान है तथा तदनुसार समाज में इसका सम्मान है वह भली भांति समझ में आ जाता है :

समाज में जब किसी व्यक्ति का अधिक सम्मान होने लग जाता है तो बहुधा कुछ लोग पथभ्रष्ट हो जाते हैं। कुछ एक को अभिमान भी हो जाता है। कई बार ऐसा व्यक्ति कोई ऐसा आचरण भी करने लग जाता है जो कदाचित् समाज के लिए उपयोगी न हो। पुरोहित और डोरी का भी यही हाल हुआ। समाज में अपने-अपने सम्मान पर इठलाते हुए दोनों आपस में उलझ पड़े। एक दूसरे पर आक्षेप-प्रत्याक्षेप प्रारम्भ हो गया :

पुरोहित : पुरोहित डोरी से कहे, तू तो है नादान।
क्यों हो मुझ से उलझती, नाम न कर बदनाम।

डोरी : अरे पुरोहित बेसमझ, बड़-बड़ करे फज़ूल।
मेरे बिना तू क्या करे-छाने धूल ही धूल।

पुरोहित : छोटा मुंह बात बड़ी-करती लाजवहीन।
मैं न बोलूं मन्त्र तो-पड़े दीन की दीन।

डोरी : मन्त्र तेरे क्या करें, बिन मन्त्रन सिरताज।
घर वाली से पूछ तू, जिस के आऊं काज।
गृहिणी तेरी तो सदा, करे ललित शृंगार।
मेरे से तुम देखते, मोहित भये अपार।

पुरोहित : सुन्दर तुझ से वह बने, पर कह किस के हेत।
देखनहार न हो भला, सौन्दर्य पड़े अचेत।

डोरी : सिर पर जब हूं मैं सजी, बनता है तू दास।
मैं हूं बड़ी कि तू बड़ा, क्या न है आभास।
ज्यों ही शुभ संस्कार का, सदन में श्रीगणेश।
सुहागिन आ कर बैठतीं, रचतीं मेरा वेश।
गाने सुन्दर गाय कर, मेरा रचें शरीर।
प्रार्थना सुख सुहाग की, करतीं रच तसवीर।
मन्त्र कुमन्त्रन तू पढ़े, क्या जानें यह लोग।
चौके में जो हो पड़ा, लगाए उस का भोग।
द्रव्य पर ही दृष्टि पड़ी, मन्त्रन की क्या बात।
लालच लालच में फंसी, पाधाओं की जात।
मैं तो कुछ न मांगती, करती सब उपकार।
उपजत सब को हर्ष है, देख ललित आकार।

दीपक में जलती भली, करती पर उपकार।
फिर भी मुझ से उलझते, तुम को है धिक्कार।

पुरोहित : गाली का तूं त्याग कर, जीभ बढ़ाए जात।
लाज न तेरे को लगे, छोटे मुंह यह बात।
प्राणन तुझ में हैं नहीं, बड़-बड़ करे जरूर।
इधर उधर ही लेटती, फिर भी करे गरूर।

डोरी : प्राणन जिन में हैं नहीं, उन बिन यह संसार।
जीवित रह सकता कभी, शीघ्र बताओ सार।
सिर में जब तक न गुथूं, भूषण की क्या बात।
मेरे ही संयोग से, रजत – सुवर्ण सुहात।
माला को तुम फेरते, मैं ही उस के बीच।
बैठी करूं सहायता, देती पाप उलीच।

पुरोहित : मैं न फेरूं तूं क्या करे, सब ही झूठी बात।
मेरे आश्रित हो सदा, फिर भी नहीं लजात।

डोरी : वर–वधू के पाणिन में, मंगलसूत्र का रूप।
समय समय पर मैं बनूं, आदर करते भूप।

पुरोहित : यजमान के निकाय में, मेरा जो है मान।
राजा भी न पा सकें, प्रजा मध्य सम्मान।

डोरी : महिलाएं यजमान की, गाली दें भरपूर।
लालच पैसे का पड़ा, सहते हो मजबूर।
मुझे तो गाली न मिले, सभी सराहें रूप।
मेरा तो सम्मान है, मेरे ही अनुरूप।
गरी–दाख की गांठ को, कक्ष दबाए जात।
कोई कदाचित् देख ले, मन ही मन भरमात।

पुरोहित : अरी डोरी कुछ होश कर, कतरे तेरी जीभ।
छोटा बड़ा न देखती, मुझ को आती खीझ।

डोरी : मन्त्र उच्चारण शुद्ध ना, पढ़ते ऊल–जलूल।
पैसे की तो बात है, बाकी सभी फज़ूल।

पुरोहित : मन्त्रन तो हैं मन्त्र ही, तूं क्या जाने मूढ़।
सब वेदों के मन्त्र में, मर्म छिपा है गूढ़।

डोरी : अपनी ही तुम हांकते, सत्य बताओ बात।
ऊतन की पुरोहित को, संज्ञा क्यों दी जात।

पुरोहित : मूर्खन की यह बात है, मुझे कहें जो ऊत।
मेरे बिन न स्वर्ग है, मैं देवन का दूत।

डोरी : सीता सिर पर मैं रही, राधा सिर के साथ।
उमा के भाल में सजी, नारी महिमा गात।

पुरोहित : नारी की तूं जात है, मैं पुरुष की जात।
तूं तो कैसे है बड़ी, क्यों मन में इतरात।

डोरी : जात-पात की बात में, अब ना है विश्वास।
युग परिवर्तन हो गया, सब में है उल्लास।
नारी अब है चंडिका, उसे न दासी जान।
पल में प्रलय मचाएगी, कर लो इस का ज्ञान।
जात-पात के जाल में, फंसा जो मतिहीन।
डूबे वह मझधार में, देख विचार मलीन।
जात-पाँत के भेद में, हम सब डूबे जात।
विकट समय सिर पर खड़ा, पीछे ते पछतात।

दोनों का झगड़ा बढ़ता ही गया। यजमान के घर की महिलाओं ने अब तक किसी नारी को इतने साहस के साथ पुरुष का सामना करते कभी न देखा था। वह मन ही मन प्रसन्न हो रही थी। झगड़ा इतना बढ़ गया कि यज्ञ-मण्डप में ही हाथापाई होने की आशंका होने लगी। डोरी पुरोहित को बांधकर चारों खाने चित गिराने को तैयार थी और उधर पुरोहित भी बिना किसी संकोच के डोरी से दो-दो हाथ करने को मूंछों पर ताव दे रहा था। दोनों के होंठ फड़फड़ा रहे थे। आंखें इतनी लाल हो गई थीं कि मानों उनसे रुधिर की धारा चोने वाली हो। दोनों के शरीर मारे क्रोध के कांप रहे थे। घूंसा-मुक्का होने ही वाला था कि एक अद्भुत घटना से बीच-बचाव हो गया।

उन दिनों स्वर्ग से देवताओं ने वीणाधारी नारद को भारतीय संस्कृति की समीक्षा हेतु मातृलोक में भेजा था। इस झगड़े की भनक उनके कान में पड़ गई और वह अकस्मात् वहां प्रकट हो गए। नारद जी ने दोनों को समझाया बुझाया। वह बोले —'देखो भाई, भारतीय संस्कृति की नैया आज मझधार में डूब रही है। इसकी इस दीन दशा को देखकर स्वर्ग में देवता तिलमिला उठे हैं। आप जात पांत और ऊंच-नीच के झमले में फंसकर इसकी छवि को बिगाड़ रहे हो। आपके पारस्परिक झगड़ों का दूसरे लोग अनुचित लाभ उठा रहे हैं। आज संस्कारों के प्रति लोगों की आस्था लुप्त होती चली जा रही है। प्रायः लोग संस्कार विहीन होते जा रहे हैं। स्थिति दिन प्रतिदिन बिगड़ रही है। आप मिल जुल कर अपनी संस्कृति को बचाने का प्रयास करें नहीं तो यह भूमि देवभूमि न रहेगी'। नारद जी आगे बोले :

देखो तुम दोनों बड़े, अपना-अपना मान।
कलह से तुम दूर रहो, पाओ फिर सम्मान।

जिस जाति में कलहन बसे, उसे बचाए कौन ?
चार ही दिन की पाहुनी, गई नाश के भौन ।
आपस के मतभेद से, हम जाते पाताल ।
समय अभी तक है बचा, कर लो कुछ संभाल ।
स्वार्थन के संसार से, करो किनारा आज ।
भारत माता देखती, कहे, बचाओ लाज ।
मातलोक में आय कर, जो देखो सब जाए ।
स्वर्ग बताऊं देवता, मस्तक दियो नमाय ।

इतना कह कर नारद जी ने मस्तक नमाया और बीणा बजाते हुए पल भर में अन्तर्धान हो गए ।

गांव व डाकघर नलेटी,
तहसील देहरा, जिला कांगड़ा
(हिमाचल प्रदेश)

बिलासपुर क्षेत्र में प्रचलित श्रृंगार गीत– सांस्कृतिक विवेचन

डॉ० श्रीराम शर्मा

बिलासपुर जनपद के लोक-गीतों में जहां एक ओर यहां के शान्तिमय जीवन, रहन-सहन, वेश-भूषा एवं सामाजिक, सांस्कृतिक परम्पराओं का अत्यन्त सजीव चित्रण उपलब्ध होता है, वहां दूसरी ओर श्रृंगार एवं करूण रस का आनन्द भी प्राप्त होता है। यहां की मनोहारी एवं सुरम्य स्थली पर नवयुवक और नवयौवनाएं अठखेलियां करती हुई निश्च्छल भाव से परस्पर एक दूसरे से प्रेम का आदान-प्रदान करती रही हैं। प्रियतम ने प्रेयसी के लिए और प्रेयसी ने प्रियतम के लिए हंस-हंस कर बलिदान देना सीखा है। इन श्रृंगार गीतों को युवक एवं युवतियां रस ले लेकर गाते हैं। श्रृंगार रस से परिपूर्ण ये गीत अनायास ही युवा हृदयों को एक दूसरे की ओर आकर्षित कर प्रीति डोर में बांध देते हैं।

इन गीतों में संयोग एवं वियोग के दोनों पक्षों को छुआ गया है। इन गीतों में बहुत से गीत मुक्तक के रूप में गाये जाते हैं। इन मुक्तकों का एक पद का दूसरे पद से कोई विशेष सम्बन्ध नहीं होता। श्रृंगार रस से सिक्त ये मुक्तक गीत हिन्दी काव्य के 'दोहे' और उर्दू साहित्य में 'रूबाई' की तरह अर्थ की दृष्टि से अपने आप में ही पूर्ण होते हैं। बिलासपुर क्षेत्र में प्रचलित इन मुक्तों में 'गंगी गीत' आते हैं। इन गीतों में कहीं तो अटूट, अनन्त और आत्मिक प्रेम की झलक दिखाई देती है तो कहीं पर प्रेम के नाम पर धोखा, छल, कपट, बिछोह और उससे प्राप्त वियोग की परत चढ़ी हुई नजर आती है। श्रृंगार रस से ओत-प्रोत यहां के लोक-गीतों में मिलन का आनन्दोल्लास, मीठा-मीठा दर्द तथा विरह-वेदना की तरल धारा प्रवाहित हुई है। सुविधा के लिए श्रृंगार गीतों का विभाजन एवं उपविभाजन इस प्रकार किया जा सकता है :

(क) संयोग श्रृंगार : १. परकीय संयोग, २. स्वकीय वियोग।

(ख) वियोग श्रृंगार : १. परकीय संयोग, २. स्वकीय वियोग।

संयोग एवं वियोग श्रृंगार से सम्बन्धित लोक-गीतों में मुख्य रूप से गंगी गीत आते हैं। गंगी गीत बिलासपुर में बहुत ही प्रसिद्ध हैं। ये गीत थोड़े बहुत परिवर्तन के साथ समस्त हिमाचल प्रदेश में गाये जाते हैं। सम्भवतः आरम्भ में 'गंगी' किसी व्यक्ति विशेष का नाम रहा हो लेकिन अब लोक-गीतों के रूप में यह नाम सर्वव्यापी बन गया है।

प्रणय भावों से युक्त साधारणतः गंगी गीतों की पहली पंक्ति निर्थक ही होती है तथा दूसरी पंक्ति ही मूल भाव की परिचायिका होती है। गंगी गीत भिन्न-भिन्न स्थानों में भिन्न-भिन्न ढंग से गाए जाते हैं। स्थान भेद के कारण इनमें प्रयुक्त लय और ताल भी अलग हो जाते हैं। गंगी गीतों के साथ ही महासू (जिला सोलन का क्षेत्र विशेष) क्षेत्र में 'झूरी' गीत गाए जाते हैं। गंगी की सारी पंक्ति झूरी की दूसरी पंक्ति से लम्बी होती है।

गंगी गीतों को गांव के युवक और युवतियां कण्ठस्थ करके निर्जन वन में, एक दूसरे से बहुत दूर, ऊंचे टीलों पर बैठ कर, प्रश्न-उत्तर के रूप में, पहाड़ों में गूंजने वाली आकर्षक स्वर लहरी में गाते हैं। गंगी गीतों के अतिरिक्त उपेक्षाकृत कुछ अधिक लम्बे कथानकों से युक्त श्रृंगार गीत भी बिलासपुर जनपद में गाए जाते हैं। ये गीत श्रृंगार के संयोग एवं वियोग दोनों पक्षों को व्यक्त करते हैं। श्रृंगार गीतों में नायिका का सौन्दर्य, मिलन, विरह-वेदना तथा स्वच्छन्द प्रेम का सहज एवं स्वाभाविक वर्णन मिलता है। श्रृंगार गीत प्राय: सावन मास, मेलों, उत्सवों एवं हर्षोल्लास के विभिन्न अवसरों पर गाए जाते हैं। श्रृंगार गीतों को वर्गों एवं उपवर्गों के अनुसार विवेचित-विश्लेषित करके उनके महत्व को आसानी से समझा जा सकता है।

(क) संयोग श्रृंगार से संबद्ध गीत :

इन गीतों में प्रेमोल्लास की धारा अत्यन्त वेग से बहती है। प्रेमी और प्रेमिका के मिलन एवं नायिका के सौन्दर्य का वर्णन इन गीतों का मुख्य विषय होता है। विस्तार पूर्वक इन गीतों का विवेचन प्रस्तुत है।

१. परकीय संयोग :

इस वर्ग के गीतों में विवाहित पुरुष का अन्य विवाहिता से, विवाहिता का किसी विवाहित पुरुष से, विवाहित का अविवाहिता से, विवाहिता का अविवाहित पुरुष से तथा अविवाहित का अविवाहिता संबद्ध प्रेम चित्रित रहता है। इस प्रेम में प्रेमियों को बहुत सी कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है। प्रेम का रोमांचकारी रूप सामने आता है। दाम्पत्य एवं सामाजिक जीवन की मर्यादाओं को तोड़ कर इस प्रकार के प्रेम की भूमिका तैयार होती है। परकीय संयोग में पुरुष का उन्माद और अभिसारिका का भय मुख्य रूप से अभिव्यंजित होता है। यहां परकीय संयोग से संबद्ध एक गंगी गीत प्रस्तुत है, जिसमें प्रेमी अपनी प्रेमिका को चोरी-छिपे मिलने का सन्देश भेज रहा है :

पार रिड़िया ते पियु बोली रा,
सामणें तूं आयां गंगीए, मेरा देखणे जो जियु बोली रा।

प्रेमी–प्रेमिका को मिले बहुत समय हो गया है इस लिए गीत में प्रेमिका को सामने आने के लिए कहा गया है ताकि प्रेमी उसे अच्छी तरह देख सके। प्रेमी प्रेमिका से बात करना चाहता है, जिस से संबद्ध गीत इस प्रकार है :

तेरे अंगणा रे चक्के घड़ने,
पारा ते तू वार आई जा, असां गल्लां रे खड़ाके करने।

परकीया से अनुरोध किया गया है कि आप पार से आर आ जाओ। मैं तुम से दिल खोल कर बात करना चाहता हूं। परकीय संयोग में नैतिक बन्धनों एवं सामाजिक रीति रिवाजों का अधिक डर रहता है। एक गीत प्रस्तुत है :

नवीं कणका रा बेजा रखणा,
जित्थी तेरा खून डुलगा, उत्थी अपणा कलेजा रखणा।

जहां पर भी नायिका का खून गिरेगा, परकीय नायक वहां पर अपना कलेजा निकाल कर रख देगा। अर्थात् अनेक कठिनाइयों एवं बन्धनों के होते हुए भी एक दूसरे की रक्षा करेंगे। दिन रात प्रिया के वियोग से आकुल प्रेमी ने अपने हृदय की वेदना को इस प्रकार व्यक्त किया है :

घड़ा भरी लेणा धोई-धोई के,
दिन कटेआ तेरे आसरे, रात कटणीं रोई-रोई के।

दिन भर प्रिया दर्शन के लिए आंख बिछाए प्रतीक्षातुर नायक निराश होकर रातें रो-रो कर गुजारता है। प्रेमी और प्रेमिका बहुत कम समय के लिए ही मिल पाते हैं। इस लिए कई बार वे वस्तुओं का आदान-प्रदान भी कर लेते हैं। वस्तुओं का आदान-प्रदान भी मन को शान्ति प्रदान करता है। प्रस्तुत गीत में नायक अपनी अंगूठी नायिका को और नायिका अपना रूमाल नायक को प्रेम निशानी के रूप में दे रही है :

रंगां बिच रंग मुंगिया,
अपना रमाल देई जा, मेरे हत्था रिया लेई जा मुंदिया।

नायिका नायक से हाथ का रूमाल प्रेम निशानी के रूप में मांग रही है और जान से भी अधिक सम्भाल कर रखने का विश्वास दे रही है :

फुल्ल फुल्लिरा लो पार ले क्यारा,
जेबा रा रमाल देई जा, असां रखणा लों जानी ते प्यारा।

साहित्य में वर्णित परकीय प्रेम के अन्तर्गत वस्तु या वेश परिवर्तन एक काव्य अभिप्रायः के रूप में प्रयुक्त हुआ है लेकिन लोक-गीतों में यह सहज स्वाभाविक व्यापार के रूप में चित्रित हुआ है। साथ ही इस कार्य में नायक और नायिका की प्रगाढ़ मनोदशा भी अच्छी तरह व्यंजित हो जाती है। परकीय प्रेम का एक अद्भुत रूप प्रस्तुत है जिस में नायक नायिका से कह रहा है कि अब हमार प्यार किसी भी स्थिति में नहीं टूट सकता। सामाजिक रीति रिवाज या बन्धन तो क्या अब चाहे कोई तलवार से काटे, हम अलग नहीं हो सकते। हमारा प्यारा अमर है :

चिट्टा कुरता सलवारी वो कन्ने,
लगेआ दिल नहीं मुड़दा, भवें बड्डी देवे तलवारी वो कन्ने।

नायिका ने सफेद कपड़े पहने हुए हैं और कपड़ों पर छोटे-छोटे काले बिन्दु हैं। इन कपड़ों में उसका सौन्दर्य और भी निखर उठता है। नायिका नायक से कह रही है कि इन कपड़ों में तुम मुझे दूर से ही पहचान लेना।

अट्टा गुन्नि के पकाणें बब्बरू,
दूरा ते पच्छयाणें पगले, चिट्टयां कपड़ेयां पर काले डब्बलू ।

नायिका के सौंदर्य वर्णन से संबद्ध एक गीत प्रस्तुत है जिसका भावार्थ है कि नायिका ने हरे-पीले रंग की चादर ओढ़ी हुई है। इसमें वह बहुत सुन्दर लग रही है। नायक नायिका से कहता है कि जब तुम इस चादर ओढ़े हुए चलती हो तो सड़कों के मोड़ टूट जाते हैं अर्थात् रास्ते में चलने वाले राही भी रास्ता भूल जाते हैं :

पाणीं भरी लेणां गागरूवे कन्ने,
सड़कां रे मोड़ टूटीगे, तेरे हरे-पीले चादरूवे कन्ने ।

अन्त में एक ऐसा मुक्तक प्रस्तुत है जिसमें परकीय मिलन के प्रति नायक का आशावादी दृष्टिकोण व्यक्त हुआ है। नायक और नायिका बैठे हुए आपस में बातें कर रहे हैं। बातचीत करते-करते अचानक नायिका यह अशंका व्यक्त कर देती है कि हम लोग बाद में मिल भी पाएंगे या नहीं। इस पर नायक नायिका को विश्वास दिलाता हुआ कहता है कि यदि हम दोनों स्वस्थ रहे तो जिन्दगी में लाखों बार मिलते रहेंगे :

पाणीं भरना कोरी पारियें,
राजी रहो जिंदगानियां, असां मिलणा लख बारियें ।

बिलासपुर में गंगी गीतों के अतिरिक्त भी परकीय संयोग के अनेक गीत गाए जाते हैं। ये गीत मुक्तक न होकर अपेक्षाकृत अधिक लम्बे होते हैं। इन गीतों में भाव तथा अर्थ की दृष्टि से सभी पंक्तियों में सम्वन्ध बना रहता है। एक गीत प्रस्तुत है जिस का भावार्थ है कि परकीय नायिका और नायक वृक्ष के नीचे बैठे आराम कर रहे हैं। नायिका नायक से कहती है कि आज आप खाना खा कर ही अपने घर जाना। मेरे घर में ब्राह्मणी खाना तैयार कर रही है। यह सुन कर नायक को शंका हो जाती है कि उसकी प्रेमिका निम्न जाति की है। वह नायिका से उसकी जाति पूछता है। वह अपनी वास्तकि जाति बता देती है। नायक उसे आज तक अगाध प्रेम करता रहा लेकिन उसे उसकी जाति तक का पता नहीं था। नायक वहां बैठने एवं रोटी खाने से इन्कार कर देता है। वह इस लिए कि वह सम्बन्ध समाज को स्वीकार नहीं होगा। इससे तो उसकी जाति ही बिगड़ जायेगी। नायिका इसका उत्तर देती है कि दोनों गंगा में नहा कर आयेंगे और दोनों की जाति पवित्र हो जायेगी। वस्तुतः परकीय प्रेम जाति-पांति के बन्धन को अस्वीकार करता है। लेकिन लोक समाज की दृष्टि से जाति-पाति के बन्धन की उपेक्षा अत्यन्त दुष्कर है। सुसंस्कृत साहित्य में जाति-पाति के बन्धनों का उल्लेख प्रायः नहीं मिलता लेकिन लोक-साहित्य में इसे विस्तृत नहीं किया गया है। इससे स्पष्ट है कि लोक-साहित्य अधिक वास्तवाधारित है :

इक पल बहई लेणां ओ मेरेया बजीरा, भुरज पत्तरा रिया छावां,
रोटी खाई लेणी मेरेया बजीरा, अड़या बाह्मणी लगी रसोईया,
जाति न पुच्छयां मेरेया बजीरा, जाति री हुन्दी चमारी।
इक पल किहां बैहणां मेरिये, सुभदरे, रोटी किहां खाणी ओ–
जाति री तूं हून्दी चमारी–ओं–तें मेरी जात बगाड़ी–ओ–
गंगा न्हाई लेणीं मेरेया बजीरा, जात लेणीं सुधारी–ओ–

परकीय प्रेम में जहां एक ओर आशंका की भावना रहती है वहां दूसरी ओर अपूर्व साहस भी मिलता है। नायिका 'चंदू' नामक नायक से कह रही है कि बागों में बहार छाई हुई है। रंग-बिरंगे और मनमोहक फूल खिले हुए हैं लेकिन हम फूल नहीं चुन सकते हैं। सारी दुनियां हमारी दुश्मन हो चुकी है। तब नायक कहता है कि बगीची के पास ही मेरा घर है। मेरा और तेरा प्यार पहले से ही है। तूं वहां आना, हम दोनों फूल चुनेंगे। दुनियां से डरने की कोई बात नहीं है :

बहार आई री ओ चंदुवा, पारा बागा बिच बहार आई री,
तेरी बगीचड़ी रे फुल्ल रूपले, किहां चुगणें, इनां बैरियां कन्ने मुकाबले किहां करने।
पारलिया धारा ओ घर किस रा, तेरा मेरा प्यार लगी रा,
फेरी छोहरिये डर किस्स रा।

लोक-गीतों में परकीय प्रेम प्रायः असमान लोगों के मध्य ही दिखाया गया है। इस प्रकार के प्रेम का उदाहरण प्रस्तुत है जिस में बताया गया है कि राजा जंगल में शिकार खेलने गया और एक रूपवती निम्न जाति गद्दीन पर रीझ गया। राजा ने उसको राजसी आभूषण व कपड़े उपहार स्वरूप दिए तथा आग्रह पूर्वक अपने राजमहल में ले आया। गीत प्रस्तुत है :

जंगलां रा रैंहणा छड्ड मुईये गद्दणी, मैहलां रे रैंहणे जो चल,
जंगलां रा रैंहणा असांगद्दियाँ जो सजदा, मैंहलाँ रा राजेयाँ जो।
चोला ताँ डोरा सट्ट मुईये गद्दणी, पैहनी ले मसरू दरयाई,
चोला ताँ डोरा असाँ गद्दियाँ जो सजदा, मसरू दरयाई राजेयाँ जो।
मेरिये बाँकिये गद्दणी, मेरेया बाँकेया राजेया............।

परकीय संयोग से संबद्ध गीतों के अध्ययन से पता चलता है कि इन में परकीय नायिका एवं नायक के स्वच्छन्द प्रेम, उत्साह, सामाजिक विधि निषेध भय, ईर्ष्या, आशंका एवं सौन्दर्य का सहज एवं स्वाभाविक रूप से चित्रण हुआ है। इनमें एक विशेष प्रकार की सहज स्वच्छन्दता के दर्शन होते हैं। लोक जीवन की ऊंच नीच की भावना भी इनमें अत्यन्त स्वाभाविक रूप से आई है।

२. स्वकीय संयोग :

इस वर्ग के गीतों में नायक और नायिका के सौन्दर्य, सुख, मिलन एवं प्रेम का वर्णन रहता है। नायक और नायिका को समाज का कोई बन्धन या भय नहीं होता। दोनों सामाजिक रीति-

रिवाजों के अनुसार परिणय सूत्र में बन्ध जाने के बाद प्रेम करते हैं। इन गीतों में हास, परिहास एवं नायिका के सौन्दर्य का वर्णन मुख्य रूप से किया गया है। इस दृष्टि से सर्व प्रथम अपेक्षाकृत छोटे – 'गंगी गीतों' को लिया जा रहा है। स्वकीय प्रेम से संबद्ध गीत प्रस्तुत है जिसमें परस्पर प्रगाढ़ प्रेम पर छींटाकशी की गई है। इसमें सामाजिक ईर्ष्या का चित्रण भी है :

पाणी भरी लेणा इक्की नालुए,
बैरी जलदे ताँ जलणें देणें, रोटी खाई लेणी इक्की थालुए।

नायिका के रूप सौन्दर्य से सम्बन्धित एक गीत प्रस्तुत है जिसमें कहा गया है कि एक तो कमर बहुत पतली है दूसरे जवानी छाई हुई है, इससे रूप और भी सुन्दर एवं आकर्षक लग रहा है :

चिट्टा रंग चवनिया रा,
इक तेरा लक पतला, दूजा जोर जवानिया रा।

नायिका नायक के गले के लिए फूलों का हार गूँथ रही है। जो कि नायक के गले में अति आकर्षक एवं सुन्दर लगता है :

तेरी घड़िया रे बारा बजदे,
मालती रे हार गुंदणें, जिह्ड़े सजना रे गला सजदे।

नायक प्रदेश जाने को तैयार है लेकिन प्रिया भी साथ जाना चाहती है। वह कुछ भी कहने के बजाए रोना शुरू कर देती है। नायक उसे चुप कराता है और साथ ले जाने का विश्वास देता है :

फुल्ल फुल्लि गया पार छप्पड़े,
रोदीं-रोदीं चुप होई जा, कन्ने चलणाँ ताँ पैह्न कपड़े।

स्वकीय संयोग से सम्बन्धित और भी अनेक गीत बिलासपुर जनपद में प्रचलित हैं। ये गीत नायिका सौन्दर्य, प्रेमोल्लास की विभिन्न स्थितियों को प्रस्तुत करते हैं। प्रेमी–प्रेमिका कई तरह की कठिनाईयों को झेलने के पश्चात् एक सूत्र में बंध जाते हैं और सदा-सदा के लिए एक दूसरे के हो जाते हैं। एक गीत प्रस्तुत है जिस में कहा गया है कि जब नायिका की बाहों के कंगन आपस में बजते हैं तो उनकी आवाज कलेजे को छू लेती है। सारा काम छोड़ कर नायक उस आवाज में खो जाता है। नायक कहता है कि तेरे सौन्दर्य की बात मैंने दूर-दूर तक की, उसके पश्चात् मैंने अपने दिल में तुझे बिठाया। वह कहता है कि नायिका के बिना उसका जीवन भादों मास की अन्धेरी रात के समान हो जायेगा, अतः शान्ति एवं सुखमय जीवन के लिए हम यहां से दूर चले जायेंगे। कहीं दूर एक छोटा सा घर बना कर हंसी-खुशी में सारा जीवन बिताएंगे :

तेरी बंगाँ री छुणमण कालजू जो लग दी,
छूटी जाँदी हात्था री दराटी हो मेरी म्याणियें।
बिंदिया री गल तेरी दूरा तक कीत्ति मैं,

अधरा री जगह तिजो कालजू च बिति मैं।
तुह्ज बाह्जी जिणाँ मेरा, भावों दा न्हेरा,
होरती बसाँगे घर मोटा माड़ा सुणि ले,
हो रहे उमराँ रे साथी, हो मेरी स्याणियें।

नायक नायिका से कह रहा है कि तुम्हारी लाल रंग की बिंदिया सौन्दर्य में और भी वृद्धि कर देती है। सजी संवरी नायिका पानी भरने गई और आते-आते पानी का भरा घड़ा टूट गया। घड़े के टूटने से उसका शरीर पानी से भीग गया। भीगे शरीर में उसकी सुन्दरता और भी निखर गई :

तेरे मत्थे जो बिंदलू लाणा गोरिये,
सिरा पर घड़ा तेरा, घड़े पर गागर,
टूटी जाँदा घड़ा, भीगी जाँदी चादर।

स्वच्छन्द एवं उन्मुक्त प्रेम धीरे-धीरे शादी में परिणत हो गया। प्रेमी और प्रेमिका पति-पत्नी बन गए लेकिन गांव के लड़के अब भी उन्हें प्रेमी-प्रेमिका के रूप में ही छेड़ते हैं :

इसा गराईं रेया लंबरा, इन्हाँ चोहरूवाँ जो,
लयाँ समझाई बाटा जाँदा सिट्टी मारदे।
पाणिये जो जाणा असाँ भरणा घड़ोलू,
किहाँ करी नालू टपणाँ।

इन स्वकीय संयोग के गीतों से पता चलता है कि ये गीत परस्पर प्रगाढ़ प्रेम, मायिका सौन्दर्य, झेली हुई कठिनाईयों आदि भावों को व्यक्त करते हैं। ये गीत स्वकीय प्रेम को व्यक्त करते हैं इस लिए इनमें सामाजिक मान मर्यादा का तिरस्कार कम रहता है।

(ख) वियोग शृंगार से संबद्ध गीत :

शृंगार रस का दूसरा पक्ष वियोग है। लोक-गीतों में वियोग भाव की व्यंजना सहज एवं स्वाभाविक ढंग से हुई है। विरह की अनुभूति की तीव्रता का मुख्य कारण प्रेमियों की जुदाई होता है। ये लोक-गीत हृदय को अपनी ओर आकर्षित करने की विलक्षण क्षमता रखते हैं। विस्तारपूर्वक इन गीतों का विवेचन प्रस्तुत है।

१. परकीय वियोग :

अपेक्षाकृत अधिक लम्बे कथानक वाले गीत वियोग शृंगार की दृष्टि से बहुत ही महत्वपूर्ण हैं। इन गीतों में एकाधिक मन:स्थितियों का उद्‌घाटन होने के कारण श्रोता के हृदय को प्रभावित करने की क्षमता इनमें अधिक होती है। जब प्रेमी और प्रेमिका सामाजिक रीति-रिवाजों एवं जाति बन्धनों के कारण मिल नहीं पाते हैं तथा सदा-सदा के लिए अलग हो जाते हैं, इस तरह के भावों को व्यक्त करने वाले गीतों को परकीय वियोग के अन्तर्गत रखा गया है। ये गीत प्रेम की

मधुर पीड़ा को मार्मिक ढंग से व्यक्त करते हैं। सर्वप्रथम परकीय वियोग को व्यक्त करने वाले गंगी गीतों को प्रस्तुत किया जा रहा है। किसी कारणवश नायिका को अपने पति के साथ जाना पड़ा। नायक अकेला रह गया :

घड़ा भरना धोई-धोई के,
नार बे बगानी सुन्दरा, कजो मरदा तूं रोई-रोई के।

नायक और नायिका सदैव के लिए अलग हो गए। अब दोनों अलग-अलग जगह रहेंगे, शायद मरणोपरांन्त हरिद्वार मिलें :

तेरी जेबा च गरी श्रो छुआरे,
जुदें-जुदें पया मरना, हुण मिलणा लो हरिद्वारे।

गंगी नायक से अलग हो गई। उसका दिल घर में अकेले कैसे लगेगा ? नायक की याद आ रही है। विरह सता रहा है :

पाणी छड़णा लो फीमदाणें जो
दूरा री ये मुइये गंगीए, दिल बोलदा नीं घरा जाणें जो।

नायक के वियोग को नायिका कैसे सहन करेगी, यह सब उसके लिए असहनीय है :

चिट्टा रंग तेरेयां तोड़ेयां रा,
दस्सी जायां किहां सैंहणां, गम तेरेयां बछोड़ेयां रा।

प्रेम की आग के लगे दाग आज भी हरे हैं। विरह की आग में हृदय आज भी जल रहा है। प्रमाण प्रस्तुत करने के लिए नायिका अपना हृदय निकालने के लिए तैयार हो जाती है :

हरी डालिया रा बाग लगुरा,
देखि जा कलेजा कढ़ी के, तेरी ममता रा दाग लगुरा।

नायिका कह रही है कि नायक के बिना इस दुनिया में मेरा जिन्दा रहना असम्भव है। नायक की शकल का कोई भी व्यक्ति इस दुनिया में देखने को नहीं मिलता। किस को देख कर मन को शान्त रखा जाये :

तेरी हट्टिया जे बिका पिस्ता,
ज्युणा हुण कठण होया, तेरी शक्ला रा कोई नीं दिसदा।

गंगी गीतों के अतिरिक्त कुछ अन्य अर्थात् लम्बे कथानक वाले परकीय वियोग से संबद्ध गीत भी विलासपुर क्षेत्र में प्रचलित हैं। इन गीतों में समाज के रीति-रिवाजों, परम्पराओं, बन्धनों एवं निषेधों का वर्णन मिलता है। एक गीत प्रस्तुत है जिस में कहा गया है कि रीति-रिवाजों के कारण नायक और नायिका दोनों मजबूर हैं। आपस में मिल जुल नहीं सकते। दोनों के बीच में रिवाजों का फासला आ गया है। रिवाजों की दूरी ने एक दूसरे को मीलों के अन्तर पर खड़ा कर दिया। दुनियां का कितना बुरा नियम है कि वह दो दिलों को मिलने नहीं देती। पता नहीं

कब तक दोनों एक दूसरे से मिलने के लिए तड़पते रहेंगे। नायिका नायक की याद में दिन प्रति दिन सूखती जा रही है। एक दूसरे को भुलाने की लाख कोशिश करते हैं लेकिन याद कभी भी कम नहीं होती। शायद किसी दिन मेले में दोनों इकट्ठे हो पायें :

मैं बी मजबूर कन्ने तू बी मजबूर है,
तेरा मेरा फासला कोहां ते बी दूर है।
दुनिया दिलां जो मिलणें नां देंदी,
दुनिया रा देखो किन्ना बुरा दस्तूर है।
तेरी याद करी करी नित नित सुकदी,
पता नीं रैहणां असां कितने क दूर है।
याद तेरी भुल्लयां भुलाई नईं जांदी,
मेले इक दिन असां आणां त जरूर है।

विरही मन की स्थिति को प्रस्तुत गीत में मार्मिक ढंग से चित्रित किया गया है। जिस तरह पंखों के बिना पक्षी नहीं उड़ सकता, उसी तरह प्रिय के बिना प्रिया भी जीवित नहीं रह सकती। नायक चला गया। संसार दुश्मन हो गया। प्रिय बिना मन कहीं नहीं लगता। पंख प्रियतम के विरह दुःख ने जला दिये और मन दुश्मनों के व्यंग्य बाणों ने घायल कर दिया। शरीर सूली पर टंग गया है :

फंग नीं पंखेरूवां उड्डी किहां जाणां,
बणी गया जग बैरी, मन किहां लाणां।
मित्र बच्छोड़े झूठे करार कित्ते,
फंग बेदणे जलाये, मन बैरियें जलाए।
सुलिया टंगोई जिन्द,
छुटकारा किहां पाणां।

इस प्रकार परकीय वियोग को व्यक्त करने वाले गीतों के अध्ययन से पता चलता है कि इनमें विरही मन की स्थिति का चित्रण सहज रूप में हुआ है। इनमें विरह वेदना तथा सामाजिक विधि निषेधों का वर्णन भी यथार्थ रूप में मिलता है।

२. स्वकीय वियोग :

लोक जीवन की यह एक बिडम्बना रही है कि युवक को जीविकोपार्जन के लिए घर से बाहर जाना पड़ता है। ऐसी विवश परिस्थिति में पत्नी को जीवन और यौवन के स्वर्णिम वर्ष अकेले ही काटने पड़ते हैं। ऐसी अवस्था में सारा जीवन सूना-सूना सा हो जाता है। इस प्रकार के गीतों में पति के प्रति पत्नी की विरहानुभूति व्यक्त होती है।

प्रियतम को सन्देश भेजने की परम्परा साहित्य में बहुत प्राचीन है। लोक-साहित्य में भी यह परम्परा विद्यमान है। प्राचीन समय में काग, कबूतर आदि पक्षियों के माध्यम से प्रियतम को सन्देश भेजे जाते थे। इसी सन्देश परम्परा से सबद्ध एक गीत प्रस्तुत हैं जिस में नायिका अपनी सखी से कलम और दवात मांग रही है, ताकि वह अपने प्रियतम को पत्र लिख कर सन्देश प्रेषण कर सके :

तेरे कोठे ते चिक्क सट्टणी,
दे दे मेरे कलम दवात, सजना जो चिट्ठी लिखणी।

नायिका कह रही है कि नायक के बिना मेरा मन नहीं लगता है। अतः मैं नायक के पत्र की प्रतीक्षा में रहती हूं। और नायक से पत्र भेजने का आग्रह कर रही है :

तेरे अंगणा च बले गिट्ठियां,
मिजो तेरा बुरा लगणा तू तां डाका ते पुजायां चिट्ठियां।

नायक और नायिका दुर्भाग्यवश अलग हो गए हैं। शायद रात को सपने में एक दूसरे से मिल सकें :

हरी डालिये तू हिलदी रैंह्यां,
दूरा रे मुकाबले, राति सुपनें च मिलदी रैंह्यां।

नायक जम्मू शहर में नौकरी करने गया। घर में पत्नी को कह गया कि एक मास बाद लौट आऊंगा। इस समय तेहरवां मास शुरू हो गया लेकिन वह नहीं आया :

चिट्टी चिट्टी चादर, फुल्ल पाणां फेरूवां,
महीने रा करार कित्ता, महीना चढ़ी गया तेरूहवां,
जम्मू रेया नौकरा, तें कदी औंणा छुट्टिये।

लम्बे कथानक से युक्त गीत भी स्वकीय वियोग को व्यक्त करते हैं। मधुर पीड़ा से युक्त ये गीत संयोग गीतों की अपेक्षा अधिक मार्मिक हैं। मानव भावनाओं का सहज मिश्रण इनमें उपलब्ध होता है। नायक की जुदाई नन्दी नायिका के कलेजे में डंक मार रही है। नायिका का खून नायक के विरह की चिन्ता में दिन प्रति दिन सूखता जा रहा है। नायिका वियोग में सूख कर कांटा हो गई है :

फूल्या मालजा बो नंदिये फूल्या मालजा,
तेरी जुदाई रे सन्देशे डंगया कालजा।
फूल्ली किक्करी मुईये फूल्ली किक्करी,
नंदीया रा खून सुक्या, तेरे फिकरे।

नायक की याद नायिका के दिल को जला रही है। बहुत से त्यौहार भी बीत गये लेकिन वह नहीं आया। दीपावली के लिए ऐंकलू (पकवान विशेष) बनाए। लोहड़ी के दिन खिचड़ी पकाई। प्रतीक्षा में दिन-रात नैन बिछाये रखे लेकिन वह नहीं आया :

तेरी बुरी सजना ज्युवा जो जलांदी,
दयाली आई सजना ऐंट्‌कलू बणांदी,
लोहड़ी आई सजना खिछड़ी पकांदी,
तेरी न्याह्‌ला सजना नैणा बछांदी।

नायक को नौकरी के लिए घर से बहुत दूर जाना पड़ा। बहुत समय बीत गया लेकिन वह लौट कर नहीं आया। नायिका कह रही है कि मजदूरी करने वाले प्रियतम तेरा स्थान यहां से बहुत दूर है। न जाने तूं कब लौट कर घर आयेगा ? आषाढ़ और श्रावण मास भी बीत गये। न जाने वह नदी नालों एवं जंगलों में घूम-घूम कर लकड़ी इकट्ठी कर रहा होगा या लकड़ी को पानी में बहा रहा होगा। उस के शरीर पर खून के घाव आ गये होंगे। ठण्ड़ी एवं सर्द हवाओं से उसका शरीर ठिठुर रहा होगा। हे प्रियतम नौकरी छोड़ कर जल्दी घर आ जाओ :

घालुआ मजूरा ओ तेरा डेरा दूर ओ,
कदीं घरें औणां।
बीति गया आह्‌ढ़, बीति गया सौण,
तू घालें, नालें रूलदा, लकड़िया ने धुलदा,
खून तेरा डुलदा, तूं पाले कन्ने ठरदा,
कदीं घरें औणां।

नायिक की याद में रो-रो कर नायिका की आंखों का काजल भी बह गया। जिस प्रियतम के लिए बदनाम हुई, वह मधुर वचन बोलने बाला दिल का बुरा निकला। पत्र लिखते-लिखते हार गई। घर से गये हुए पांच महीने हो गये। हे पापी प्रियतम जल्दी घर लौट आओ :

अखियां रा कजला रोई डोलेया,
जिभा रा मिट्ठा, दिला रा बैरिया,
तेरे पीछे हुई बदनाम।
नांव लिखेया कोरिया कापिया,
पंज महीने गई रे होये,
घरें आओ छोड़ पापिया।

नायिका न जाने कितने देवी-देवताओं के सामने प्रार्थना करके हार गई लेकिन प्रियतम घर नहीं लौटा। लौटने की आशा का अब कोई सहारा नहीं बचा है फिर भी आंखों से निकला हर आंसू यही कहता है कि आज कोई आने वाला है :

अक्खां तक दियां सड़कां रे मोड़,
अज्ज कोई आणें वाला है।
देवियां तां देवते मैं कितने मनाई बैठी,
किस्स ते मैं आस करुं लक्ख बारि रोई बैठी,
रोदां आंजू ये पल पल बोलदा,
अज्ज कोई आणें वाला है।

सावन का महीना विरहिणियों के लिए अत्याधिक दुःखदायी होता है। सावन मास की वर्षा शुरू होते ही हरी-हरी धरती बादलों की चादर ओढ़ लेती है। सुन्दर-सुन्दर हरी-भरी पहाड़ियां भी घूंघट डाल लेती हैं। पक्षी मधुर कलरव प्रारम्भ कर देते हैं। नदी नालों के किनारे ग्वाले भी मीठी मीठी बांसुरी बजानी शुरू कर देते हैं। आमों से भरी डालियां धीरे–धीरे झूल उठती हैं। ऐसे समय में विरहिणी नायिका अपने सुन्दर अंगों को ढकती फिरती है। सावन मास की हवा के झोंके उसके परिधानों को उड़ाते रहते हैं। प्रस्तुतः गीत में सावन मास की विरहिणी नायिका का अत्यन्त मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया है :

बरखां उतरियां सौणां रियां,
बद्दला रे ओढ़े सालू।
घूंड कठदियां धारां छैलियां,
छैल धारां रे बांके पंखेरू।
मिठी मिठी लगे बांसुरी,
नालें नाले बजांदे गभरू।
अम्ब झूलदे डालुए कन्ने,
कुड़ी ढकी-ढकी थकदी,
छैल अंगां जो सालुये कन्ने।

साहित्यिक प्रसाधनों से विहीन लोकगीत विरह कथा को कितनी सहजता एवं मार्मिकता के साथ प्रस्तुत करते हैं। एक गीत प्रस्तुत है जिसमें नायिका व्यथा विगलित वाणी में कह रही है कि नायक का वियोग सहना मुश्किल हो गया है। उसे अपनी उपस्थिति ही काटने आती है। सारी-सारी रात दीपक जलाकर रात काटती है। प्रियतम न तो कल ही लौटा और न आज ही आने की संभावना है। अकेलेपन में उसका दिल अंदर ही अंदर जलता रहता है। नायक ने लाख वायदे किए थे लेकिन सब तोड़ दिए। उसने तड़फा-तड़फा कर नायिका का बेहाल कर दिया। नायिका आगे कहती है कि उसे मेरी इस आवस्था पर थोड़ा सा तरस भी नहीं आया। उसने कभी भी मुझे याद नहीं किया। आज तक एक अक्षर भी नहीं लिखा विवाह के समय मेरे साथ फेरे तो लगाए लेकिन अब घर की फेरी लगानी छोड़ दी :

तेरा बछोड़ा नीं झलया जांदा,
अपणाँ ही आप खाणें जो औंदा।
सामखियाँ राति बयूवा बालि बालि देखदी,
कल बी नीं आया, अज बी नीं आया।
तोड़ियाँ वो पापिया, पक्कियाँ थी कित्तियाँ,
तरस नीं आया, कैं तरसांदा।
कदीं बी नीं औंदी याद मेरी,
हरफ बी नीं लिखेया, लिखी बी नीं पैंदा,
फेरे ताँ लाए हुण फेरी बी नीं पौंदा।

अब स्वकीय वियोग से सम्बन्धित एक ऐसा गीत प्रस्तुत है। जिसमें कि नायिका के साथ-साथ बच्चों की अवस्था का चित्रण भी हुआ है। नायक परदेस गया हुआ है उसके बच्चे और स्त्री अकेले दिन रात प्रतीक्षा कर रहे हैं :

ओ नमाणेया हंसा,
केहड़ी बेला तैं लेया बनवास।
होर ताँ पंछी हट्टी फिरी औंदे,
तेरी बाट नमाणीं झूरदी।
होर ताँ पंछी बच्चड़ू खलांदे,
तेरे बचड़ू नमाणें रूलदे।
ओ नमाणेयाँ हंसा, तेरी डाली नमाणी झूलदी,
तैं केहड़ी बेला लेया बनवास।

उपर्युक्त गीत में नायक के लिए अकेले हंस की उपमा दी गई है। इसमें कहा गया है कि ओ अकेले हंस! तूं ने किस मुहूर्त में बनवास लिया था, जो अभी तक घर नहीं लौटा। जितने भी पक्षी बाहर गए हुए थे, सब लौट आए लेकिन तेरा रास्ता अब भी सूना है। अर्थात् जितने भी लोग परदेस गए थे सब घर लौट आए हैं, केवल तू ही घर नहीं आया। सभी पक्षी अपने बच्चों को खिलाते हैं लेकिन तेरे बच्चे दिन-रात रोते रहते हैं, अर्थात् सभी लोगों के बच्चे दिन रात हंस खेल कर जीवन व्यतीत करते हैं, केवल तेरे बच्चे दिन रात तेरी याद में रोते रहते हैं। आगे कहा गया है कि ओ अकेले हंस! तेरी डाली सूनी है। तूं किस समय घर से बाहर निकला कि अब तक वापस ही नहीं आया।

उपर्युक्त गीत प्रतीकों एवं उपमाओं की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है। स्वतः ही प्रतीक एवं उपमाएं गीत में समाविष्ट हो गए हैं। नायक के लिए हंस, परदेस जाने के लिए बनवास, घर के लिए डाली तथा व्यक्तियों के लिए पक्षी शब्दों का प्रयोग बहुत ही मार्मिक और व्यंजक है।

अन्त में कहा जा सकता है कि स्वकीय वियोग के अधिकांश गीत लोक जीवन की वास्तविक स्थितियों पर आधारित हैं। दाम्पत्य प्रेम का चित्रण इन गीतों का मुख्य विषय होता है। नायक को घर से दूर रहना पड़ता है इस लिए नायिका घर में अकेली ही रहती है। उस अकेलेपन में उसे जो विरह सताता है, उसका मर्मस्पर्शी चित्रण इन गीतों में हुआ है। नायक-नायिका के विरही मन की अवस्था तथा नायक-नायिका के अलग-अलग रहने की विवशता का भी मार्मिक चित्रण इन गीतों में स्वाभाविक रूप से मिलता है।

रिसर्च एसोशियेट,
हिन्दी विभाग,
हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय,
शिमला–५।

चैत्र मास में रली़ पूजन

—सुदर्शन डोगरा

रली़ पूजन लड़कियों का सर्व प्रिय उत्सव है। यह उत्सव फाल्गुन मास के मासान्त से आरंभ होकर बैशाखी तक चलता है। इस उत्सव का सम्बन्ध एक नव विवाहिता कन्या से भी जोड़ा जाता है। जिसे अपने से छोटा वर मिला था। जब उसे इस बात का पता चला तो उसने ससुराल जाते समय नदी में छलांग लगा दी। उसी को बचाने के लिए उसका भाई भी नदी में कूद पड़ा। उन दोनों के साथ ही उस कन्या के पति ने भी छलांग लगा दी। इस प्रकार तीनों का अन्त हो गया। मरने से पहले लड़की ने कहा कि जो भी कुंवारी कन्या चैत्र मास में हम तीनों की पूजा करेगी उसे मन वांच्छित वर की प्राप्ति होगी। कहते हैं तभी से यह पूजन आरम्भ हुआ है। इस पूजन का प्रचलन कांगड़ा, मण्डी, चम्बा, कुल्लू, ऊना तथा सुन्दरनगर के क्षेत्रों तक ही अधिक है। हिमाचल के निचले भागों में यह प्रायः लुप्त होता जा रहा है।

रली़ का पूजन गांव की लड़कियां मिल कर करती हैं। अपने अन्दराड़ (मुहल्ले) की आठ दस या इस से भी अधिक लड़कियां एक घर में रली़ की स्थापना करने हेतु स्थान नियुक्त कर लेती हैं। यह स्थान प्रायः घर के एक कोने का आला अर्थात् सेलफ रहित अलमारी का खाना होता है। इसी में रली़ पूजन किया जाता है। रली़ के भाई का नाम वस्तु तथा पति का नाम सैंकर है जो कालान्तर में शंकर का पर्यायवाची हो गया है।

रली़ के पूजन से पहले इन तीनों की मिट्टी की मूर्तियां दनाई जाती हैं। मूर्तियों के लिए चिकनी मिट्टी लाई जाती है। मिट्टी लाने का स्थान भी गांव में निश्चित ही होता है। फाल्गुन के मासान्त को लड़कियां फूल, अक्षत, कुमकुम, दूब आदि लेकर उस निश्चित स्थान पर पहुंच कर वहां की भूमि की पूजा करती हैं तथा मिट्टी को न्युन्दर (निमन्त्रण) देकर एक कोड़ी वहां पर दबा आती हैं। (सम्भवतः कोड़ी का दबाना भूमि को मिट्टी का मूल्य चुकाने के अर्थ में लिया जाता हो क्योंकि जब से रली़ का पूजन आरम्भ हुआ है उस समय कोड़ियों का भी मुद्रा सिक्कों के रूप में प्रचलन था। युग बदल गया परन्तु कोड़ी की प्रथा वैसी ही बनी रही होगी।) पृथ्वी के आगे धूप जगा कर लड़कियां धरती माता से प्रार्थना करती हैं कि हे मां! हमें ऐसी मिट्टी देना जिससे हमारी बनाई हुई मूर्तियों में किसी प्रकार की दरार इत्यादि न आए। ऐसा कह कर लड़कियां गाती बजाती हुई अपने अपने घरों को लौट आती हैं। इनके इस मंगल कार्य में स्त्रियां भी इनका साथ देती हैं।

अगले दिन सक्रान्ति को नाम मात्र की छोटी-छोटी तीन मूर्तियां, रली़, सैंकर और वस्तु की स्थापित कर दी जाती हैं तथा पूजा आरम्भ कर दी जाती है। किन्तु सही मूर्तियों को मूर्त

रूप सक्रान्ति को मिट्टी लाकर ही दिया जाता है लड़कियां गाती बजाती हुई मिट्टी लाती हैं, उसे छानती हैं, उसे गुंधती हैं तथा उसे रुई मिला-मिला कर मजबूत बनाती हैं ताकि मूर्तियों में दरारें न पड़ें। मिट्टी के गूंध लेने के बाद गांव की सुघड़ स्त्रियां, जो इस कार्य में दक्ष होती हैं, तीन मूर्तियां बनाती हैं दिन भर इन्हें छाया में सुखाया जाता है। जब ये सूख जाती हैं तब इन्हें पूजा के आले में पूजन के लिए स्थापित किया जाता है रली को लाल वस्त्र तथा सैंकर व वस्तु को पीले वस्त्र से ढक दिया जाता है। लगभग दो सप्ताह तक तो इन्हीं मूर्तियों का पूजन किया जाता है। तत्पश्चात् इन्हीं के पास फिर बड़ी-बड़ी सुन्दर रंगों से सुसज्जित मूर्तियां स्थापित की जाती हैं। कांगड़ा शहर से भी कुछ लोग बनी बनाई रलियां ले आते हैं क्योंकि वहां के कुम्हारों को इन मूर्तियों के बनाने का विशेष कमाल हासिल है। ये बनी-बनाई मूर्तियां काफी महंगी बिकती हैं। कुछ ग्रामीण स्त्रियां स्वय ही ऐसी मूर्तियां तैयार कर लेती हैं। ये तीनों प्रकार की मूर्तियां पूजा के स्थान में रखी जाती हैं। रली का अच्छा खासा परिवार लगता हैं। रली का पूजन कोई साधारण ढंग का पूजन नहीं है। इस में प्रत्येक कार्य के लिए गीत गाया जाता है। जैसे फूल चुनने के लिए जाते समय सभी लड़कियां उस घर में एकत्रित हो जाएंगी जहां रली की स्थापना की गई होगी। घर से निकलते ही गीत आरम्भ हो जाएगा :

ओ आ ताँ मिल्ला मेरियो सँईयो सहेलड़ियो,
सँइयो सहेलड़ियो, फुल्लड़ियाँ छुंट्टगण जाणा ए।
होरना ताँ छुंट्टणियाँ भैणे गोदाँ दो गोदाँ,
गोदाँ दो गोदाँ, रलियें छुंट्टणी छड़ सारी ए।
होरन ताँ गुंदियाँ भैणे लड़ियाँ दो लड़ियाँ,
लड़ियाँ दो लड़ियाँ, रलियें गुंदिया चौंसर हार ए।
हार ताँ सुक्का भैणे पलंगे दें पोऐं,
पलंगे दें पोऐं, रली सुक्की सोंहरियाँ देस ए।
तू कजो रोंदी रलिये लाडलिये रलिये लाडलिये,
कन्नें घलगे वस्तुए भाईये जो।
भाइयें ताँ रहणा भैणे चार धियाड़े,
चार धियाड़े रलियें कटणी उमर सारी ऐ।

इसी प्रकार पूजा करने वाली प्रत्येक लड़की का नाम ले ले कर यह गीत गाया जाता है। गाती हुई लड़कियां अलसी के खेतों में पहुंच जाती हैं। वहां गडुआ नामक जंगली फूल चुन-चुन कर अपने छक्कुओं (फूल चुनने की छोटी टोकरियों) को दबा-दबा कर भरती हैं। उनके ऊपर भान्ति-भान्ति के जंगली फूल लगा कर उन्हें सजाती हैं। छक्कुओं के घेरे में हरी दूब दबा कर उन्हें और भी आकर्षित बना लेती हैं। फिर गांव के समीपस्थ जलाशय, नदी तट अथवा बावड़ी में जा कर स्नान करके अपने छक्कुओं को पानी में डुबो-डुबो कर धोती हैं। देखने वाली विचित्र बात तो यह है कि ऐसा करते समय उनका एक भी फूल पानी में नहीं गिरता। स्नान करती हुई गीत गाती हैं :

रोग्रा दियां पैड़ियां किछ उच्चड़ियां किछ डुगड़ियां,
रली संह भंण डुब्बी मूई ए ... ... ।
लायां भई वस्तुआ तू चुभड़ियां नकडुबड़ियां,
रलिया संह भंणा कढ़ी ल्योयां ए।

इसी प्रकार टोली की प्रत्येक लड़की तथा उसके भाई का नाम ले-ले कर गीत गाया जाता है। नहा-धो कर, फूल चुन कर लड़कियां ड्योढ़ी के पास खड़ी होकर गीत गाती हैं :

फुल्लां छुंहगी मैं जे आई, फुल्लां छुंहगी मैं जे आई,
दित्तिया परोली घुआड़ माए, बाड़िया फुल्ल गलाबे दा।
दित्ती परोल् न जे उघड़े, दित्ती परोल् न जे उघड़े,
कोठें टप्पी करी आ धिये बाड़िया फुल्ल गलाबे दा।
फुल्लां छुंहगी मैं जे आई खाणे भोजन दे माए बाड़िया फुल्ल गलाबे दा।
कोठें उप्पर लुच्ची पूरी, कोठे उप्पर लुच्ची पूरी,
कोठें चढ़ी करी खाह धिये बाड़िया फुल्ल गलाबे दा।

गीत गा चुकने के पश्चात् लड़कियां रली पर से पहले दिन के चढ़ाए हुए बासी फूलों को हटाती हैं। कुछ लड़कियां धूप-दीप नैवेद्य का प्रबन्ध करती हैं तो कुछ पखड़ी हंडाने के काम में लग जाती हैं। पखड़ी हंडाने का अभिप्राय है कि इष्टदेव को बुलाने से पहले घर के आंगन, डयोढी तथा देहलियों पर सुन्दर चौका डालना तथा पूजा द्वारा स्थान को पवित्र करना है। (कांगडा में पखड़ी को विशेष महत्व दिया जाता है।) पखड़ी का भी गीत है। जब कोई लड़की पखड़ी हंडाने लगती है तब अन्य लड़कियां गाती हैं :

लाल पखड़ी सपेद पखड़ी,
पहियां दी पखड़ी हंडाणी महाराज जी।
फुल्लां दी पखड़ी हंडाणी ए,
भख भी आया जी बात भी आया,
पखड़ी उडणा लग्गी ए।
उड़णा लग्गी तां उड़णा दे नूहें,
सूने दी पखड़ी हंडांगे महाराज जी
रूपे दी पखड़ी हंडांगे ए।

पखड़ी हंडा चुकने के पश्चात लड़कियां रली के पूजन में बैठ जाती हैं। सबसे पहले जल चढ़ाया जाता है तब गाती हैं :

मेरिया निमलिया नीरा किधर देसे ते आया,
तीरें देस छड्डिया परदेस छड्डिया गंगा-जमना ते आया।

फिर कुमकुम चढ़ाती हैं तब गाती हैं :

मेरिया रत्तड़िया कुंगुआ किधर वेसे ते आया,
कुंगुएं देस छड्डिया परदेस छड्डिया नगरकोटे ते आया ।

अक्षत चढ़ाते हुए :

मेरे चिटडेयो चोलो किधर देसे ते आए,
चोलां देस छड्डिया परदेस छड्डिया नगरकोटें ते आए ।

दूब चढ़ाते हुए गाती हैं :

मेरिये हरिये-हरिये द्रूबे किधर देसे ते आई,
द्रूबें देस छड्डिया परदेस छड्डिया हरे बागे ते आई ।

गुड़ चढ़ाते हुए :

मेरिया मिठड़िया गूड़ा किधर देसे ते आया,
गुड़ें देस छडे गुड़ें खेत छडे नगरकोटें ते आया ।

इसके पश्चात् वे अपने फूलों की छावड़ियों को रली पर उड़ेल देती हैं और तब गाती हैं :

डुल् छाबड़िये डुली जायां, मेरिया रलिया दें भागें डुली जायां,
मेरे सैंकरे दे भागें डुली जायां,
मेरे वस्तुए दे भागें डुली जायां, डुल छाबड़िये ।
जिन्ने खाधड़ी होसी रोटी, तिसा दी फुट्टी जायो पोटी,
जिन्ने पीतड़ी होसी चाह, तिसा दें गलें लग्गों फाह ।
डुल छाबड़िये डुली जायां मेरिया रलिया दे भागें डुली जायां,
मेरे सैंकरे दे भागें डुली जायां, मेरे वस्तुए दे भागें डुली जायां ।

पूजा करने के पश्चात् लड़कियां दीवार पर एक सुहाग बिन्दलू लगाती हैं अर्थात् कुमकुम से एक गोल बिन्दी बारी बारी से लगाती हैं तब गीत गाती हैं :

इक मेरा टिकलू इक मेरा बिन्दलू
त्रीयें बिन्दलुएं गंगा न्होती ।
गंगा ते पचेडें न्होती,
सजरा मक्खण बाही रोटी ।
उठ मेरी माता भित्तां घुआड़,
कन्या कुआरियां पूजण आइयां ।
पूज पजेंदियां क्या फल् मंगदियां,
अम्बड़िया घर बोआ मंगदियां ।
सस्सड़िया घर सोहरा मंगदियां,
खिनुएं खलैंदा देर मंगदियां ।
सूने चोटियां वीर मंगदियां,
होर क्या मंगरियां मत्थें कुंगू सिरें सुहाग ।

जंगली फूल गड्डुए के कुछ फूल लेकर रली, सैंकर व वस्तु पर छींटे मारती हुई गाती हैं :

गड्डुआ डाला गड्डुआ डाला,
गड्डुए तेरे चारड़े ।
दस कुसुम्भे वारड़े ।
वारा-बारा पत्तरिया, रलि़ये माए दियां माए सीसां
लाख वरेसां ।
भैंणा भाइयां अन्तर जोड़ी ।

रली का पूजन कर चुकने के पश्चात् लड़कियां द्रेक नामक पेड़ का पूजन करती हैं तथा यह गीत गाती हैं :

द्रेके ताँ द्रेके ओ लोडलिये ओ लोडलिये,
द्रेका लागड़े दरकानू, द्रेका लागड़े दरकानू ।
जितणे ताँ द्रेका ओ दरकानू लगे ओ दरकानू लगे,
उतणे अम्बड़िया घर पूत, उतणे सस्सड़िया घर बेर ।
पुत्रा ताँ देसाँ ओ घर भरिया ओ घर भरिया,
धीयाँ भरेया संसार, धीयाँ भरेया संसार ।
पुत्राँ ताँ देसाँ ओ दूधू भत्तू ओ दूधू भत्तू,
धीयाँ खाट्टधड़ी छाह, धीयाँ खाट्टधड़ी छाह ।
पुत्राँ ताँ देसाँ ओ नीला घोड़ा ओ नीला घोड़ा,
धीयाँ चीट्टकदा डोला, धीयाँ चीट्टकदा डोला ।
द्रेके ताँ द्रेके ओ लोडलिये ओ लोडलिये,
द्रेका लागड़े दरकानू, द्रेका लागड़े दरकानू ।

द्रेक एक ऐसा पेड़ है जिसमें सब से अधिक फल लगते हैं तथा वे तब तक नहीं झड़ते जब तक नए फल न लग जाएं । इसीलिए इस पेड़ की पूजा की जाती है ताकि लड़कियों के परिवार भी द्रेक की भान्ति हरे भरे रहें ।

द्रेक का पूजन करने के पश्चात् सूर्य को अर्घ दे कर लड़कियां अपने-अपने घरों को चलती हैं तथा गाती हैं :

हस्सी ताँ खेली कुड़ियाँ घराँ जो चल्लियाँ
बिन्दलुए चल्लियाँ गुआई राम ।
काहे दा तेरा बिन्दलू नी भैणे
काहे दी जड़त जड़ाई राम ।
सुने दा मेरा बिन्दलू नी भैणे
सुच्चियाँ दी जड़त जड़ाई स्याम ।
होलें होलें घड़ सनियारा

मत मेरी नणद सुणेंसी स्याम।
नणद सुणेंसी क्या जी करेंसी
घरे मंझ झगड़ा पुग्रासी राम।

इसी प्रकार लड़कियां प्रति दिन रली का पूजन करके अपने-अपने घरों को चली जाती हैं। दिन छुपते ही फिर सभी एकत्रित होकर रली की सन्ध्या व आरती उतारती हुई गाती हैं :

हरी सन्ध्या सिमरो मन्दर को मैं जाती।
काहे का दिया रामा काहे की बाती
काहे की जोत जलें दिन राती, जलें दिन राती।
हरी सन्ध्या सिमरो मन्दर को मैं जाती।
माटी का दिया रामा नरमें की बाती जी नरमें की बाती
जगमग जोत जगे दिन राती, जगे दिन राती।
हरी सन्ध्या सिमरो मन्दर को मैं जाती।

आरती के पश्चात् गरी-दाख (खोपा-किशमिश) का प्रसाद लगा कर अपने-अपने घरों को चली जाती हैं।

सभी लड़कियां सोमवार का व्रत रखती है जिस को रली का बार कहते हैं। उस दिन लड़कियां दूध, दही से भात खाती हैं। नमक नहीं खाती। जिस घर में रली का पूजन किया जाता है उसी घर में उन्हें भोजन करवाया जाता है। भोजन करते समय लड़कियां मौन रखती हैं। जब आधा भोजन कर चुकती हैं तब गाती हैं :

अधड़ा खाद्दघड़ा अधड़ा थालें,
होर जे रिहा सैंह रलिया दें बारें।
तू जियाँ रलिये तेरा बावला जिये,
माई सैंह सर्व सुहागण होऐ।

इसी प्रकार सभी लड़कियों का बारी-बारी से नाम लिया जाता है तथा गीत के बोलों के साथ भात खाया जाता है। दो सोमवार तो लड़कियों के यूं ही दौड़ धूप में बीत जाते हैं परन्तु तीसरे सोमवार से मोड़ली गाने का कार्यक्रम आरम्भ हो जाता है।

तीसरे सोमवार को पूजन तथा भोजन से निवृत होकर लड़कियां सुन्दर सुन्दर वस्त्र पहन कर मोड़ली गाने के लिए तैयार हो जाती हैं। वे एक छाबड़ी (टोकरी) को फूलों से सजाती हैं। चमेली की सुगन्धित कलियों से उसकी लड़ियां बना कर टोकरी के गिर्द लटका कर उसका खूब शृंगार करती हैं। उस टोकरी में गणेश की मूर्ति रख कर घर-घर मोड़ली गाने जाती हैं। ये एक लड़की को खजांची नियुक्त कर लेती हैं जो मिलने वाले रुपये पैसे को अपने पास रखती है। अपने साथ अनाज इत्यादि उठाने के लिए ये एक कुली भी ले लेती हैं। फिर वे प्रत्येक घर में जाती हैं। गांवों वाले इन लड़कियों का आना शुभ समझते हैं। इन्हें आदर सत्कार से बैठक में बिठाते हैं तब ये मोड़ली गाती हैं :

मोड़ली लाई नी सैइयो मोड़ी तोड़ी लाई,
कौण सुहागण मेरिया मोड़लिया देखण आई ?
रली सुहागण मेरिया मोडि़या देखण आई ।
जायाँ भई सैंकरा तू दिल्लिया दे सैहर,
आणेया भई सैंकरा तू सूहा–सूहा चूड़ा ।
सूहा–सुहा चूड़ा रलि़या काहे सो देणा ?
सूहा-सूहा चूड़ा रलि़या बाहीं च पाणा, रलि़या बाहीं च पाणा ।
जायाँ भई सैंकरा तू दिल्लिया दे सैहर,
आणेयाँ भई सैंकरा तू रंगबरंगा घगरा ।
रंगबरंगा घगरा रलि़या काहे सो देणा,
काहे सो देणा रलि़या सस्लडि़या सो देणा ।

बाद में घर की स्त्रियों को हंसाने के लिए घर के बड़े पुत्र का नाम लेकर रंगबिरंगा घगरा के स्थान पर फटा हुआ घगरा मंगवा कर उसकी मां को देने के लिए भी कहा जाता है ।

इसके अतिरिक्त एक अन्य गीत भी गाया जाता है :

कौण चलेया चम्बै चाकरी कौण पांदी है अड़ियां,
सैंकर चलेया चम्बैं चाकरी रली पांदी ए अड़ियां ।
क्या वो लाडी तुध लैमणा सारा घर वर तेरा ।
कतणे जो लैणा चरखोटड़ू पूणियां बटणे सलाई ।
गली कैंहनीं जांदा चरखोटड़ू अग्ग लग्गे सलाई ।
बाहीं जो लैंणा सूने चूड़ला इक ढाका जो लैंघा ।
बाहीं जो चूड़ा तां देवसां जां जागत खेले ।

इसी प्रकार घर के सदस्यों के नाम ले-लेकर गीत गाया जाता है । लोग इनसे भजन इत्यादि भी सुनते हैं । प्रत्येक घर से इन्हें अन्न धन प्राप्त होता है । ये लड़कियां इस धन को एकत्रित करके रली के विवाह पर खर्च कर देती हैं ।

रली का विवाह कोई साधारण गुड़ियों का विवाह नहीं होता । लड़कियों की दो टोलियां, एक सैंकर की ओर तथा दूसरी रली की ओर, बंट जाती हैं । दोनों टोलियां बैठ कर घोड़ियां, सेहरे तथा सुहाग गाती हैं । चैत्र के मासान्त को जिस घर में रली पूजी जाती है, उनके आंगन में वेदी बनाई जाती है । समूहत (मंगल स्नान), तेल, सांद सभी कुछ पण्डित को बुला कर उसी प्रकार करवाया जाता है जैसे लड़के लड़कियों के विवाह में करवाया जाता है । जिस घर में रली पूजन किया जाता है उसी घर की लड़की रली का कन्यादान करती है । रली को सोने के बालू (नाक का आभूषण), हाथों में चान्दी की चूड़ियां, पैरों में पायजेबें तथा सुन्दर वस्त्रों से सुसज्जित किया जाता है । सैंकर को गोटे का सेहरा तथा किनारी वाले कपड़े पहनाए जाते हैं । इसी प्रकार वस्तु का भी सुन्दर वस्त्र पहना कर शृंगार किया जाता है । कोडियों और गरी (खोपे) के कलीरे सभी लड़कियों द्वारा रली को पहनाए जाते हैं । कन्या दान के बाद विदाई

होतीं है। रली का स्थान जरा खिसका कर अलग कर दिया जाता है। इस अवसर पर कन्या दान करने वाली लड़की पण्डित-पण्डिताइन को वस्त्र तथा पात्र भी दान करती है। कुछ लोग जो समर्थ होते हैं शैय्या का दान भी करते हैं। बैशाखी के दिन प्रातः से ही रली की बिदाई की तैयारियां आरम्भ हो जाती हैं। रली को सुन्दर पालकी में सैंकर तथा वस्तु सहित बिठाया जाता है। जिन फूलों से मास भर उनकी पूजा की होती है उन्हें भी रली का दहेज समझ कर पालकी में रख दिया जाता है। (लड़कियां इन फूलों को प्रति दिन सुखाती रहती हैं ताकि यह खराब न हों।)

गांवों की सभी स्त्रियां उस दिन खूब गाती बजाती हैं। रली के विवाह के सभी संस्कार गीतों को गा-गा कर ही सम्पन्न होते हैं। लड़की विवाह तथा रली के विवाह में विशेष अन्तर नहीं रह जाता। गांव के डूमणे भी रात को अपनी शहनाइयां बजा कर इस विवाह की शोभा को बढ़ाते हैं। सभी ग्रामीण स्त्रियां मिल कर भटूरू बनाती हैं, कचनार, क्यूं, मूंगरे की सब्जी तथा भल्ले इत्यादि पका कर टोकरों में भर लेती हैं। ठीक समय पर मुहूर्त देख कर आंगन से रली का पालकी उठाई जाती है। कन्या की विदाई के गीत गाते हुए रली को नदी के किनारे ले जाया जाता है। वहां जा कर बड़े-बड़े तारू (तैराक) इन मूर्तियों को गहरे पानी में डूबो देते हैं और ऊपर से पालकी में रखे फूल भी गिरा देते हैं जिससे समस्त जल पुष्पमय हो जाता है। रली को जलप्रवाह करते समय सभी की आंखों में आंसू आ जाते हैं तथा पूजा करने वाली लड़कियां तो सुबक-सुबक कर रोती हैं। है भी सच ! मानव का मन प्रेम का प्यासा है। एक मास दतचित निरन्तर जिस की पूजा, अराधना व तपस्या की हो उसे एक ही क्षण में आंखों से ओझिल होते हुए किसका मन नहीं भरेगा ? फिर लड़कियों को तो स्वयं दूसरे घर में जाना होता है न जाने उनका भावी जीवन कैसा हो ? कुछ क्षण मन को सम्भाल कर सभी लोग नदी के किनारे रोटी इत्यादि जो वे साथ लाए होते हैं, खा कर अपने-अपने घरों को लौट आते हैं।

वैशाखी को ये मेले कांगड़ा के समीप मटौर, चामुण्डा देवी के पास बाण गंगा के किनारे बैजनाथ में खीरगंगा तथा अन्य नदियों के किनारे लगते हैं। लोग दूर-दूर से आकर गहरे पानी में रलियों का जलप्रवाह करते हैं। रली पूजन कांगड़ा का प्राचीनतम सांस्कृतिक पूजन है। जिसमें हमारी धार्मिक एवं सांस्कृतिक भावनाओं का समन्वय है। ऐसा लोक विश्वास है कि जो लड़कियां रली का विधिवत् श्रद्धा से पूजन करती हैं भगवान शंकर तथा माता गौरी की कृपा से उन्हें मनचाहे वर की प्राप्ति होती है।

भाषा अधिकारी/अनुसन्धान सहायक,
भाषा एवं संस्कृति विभाग,
हि०प्र० शिमला–१।

रियासत कुमारसैन प्रथम राज-गद्दी

—अमृत कुमार शर्मा

पुराने समय में हमारा देश कई रियासतों में बंटा हुआ था। एक रियासत का निर्माण कुछ एक परगनों को मिला कर हुआ करता था, किन्तु उन पुराने राजाओं महाराजाओं के समय में कुमारसैन रियासत में कोई राजा नहीं था। इस रियासत में राजा कहां से और कैसे आया, इसकी एक रोचक एवं अद्भुत कहानी है।

वर्तमान बिहार प्रदेश में गया नामक स्थान है, वहां के चार बहादुर शूरवीर भाई एक साथ शिकार खेलने के लिए एक घने जंगल में गए। रात उसी जंगल में गुजारने के बाद दूसरे दिन प्रातः ही शिकार खेलने के लिए निकल पड़े। यह उल्लेखनीय है कि जब कभी भी कोई क्षत्री शूरवीर शिकार खेलने के लिए जाते थे तो बिना शिकार किए वे वापिस अपने रणवासों या महलों में आना अपनी और क्षत्रीय धर्म की शान के विरुद्ध समझते थे, यही एक मात्र कारण उन चार शूरवीर भाइयों का भी था। इसी निश्चय के कारण उन्होंने रात्रि जंगल में बिताई और दूसरे दिन शिकार खेलने के लिए चल दिए।

उन वीरों के दृढ़ संकल्प के अनुरूप ही उन्हें उयके कार्य में सफलता भी प्राप्त हो गई। वे जंगल का मार्ग अभी पार कर ही रहे थे कि उनकी आंखों को एक सुन्दर हिरण ने अपनी ओर आकर्षित कर लिया। हिरण बिल्कुल उनके सामने जंगल में अकेला प्रकृति का आनन्द ले रहा था। परन्तु उस वन स्वतन्त्र प्राणी का आकर्षण उन वीरों को अधिक देर तक आकर्षित नहीं कर सका। चारों भाइयों ने निर्णय किया कि इस वन्य प्राणी का शिकार कर इसकी सुन्दर मखमली खाल रानियों को भेंट की जाए। अतः उन्होंने अपने धनुष पर चिल्ला चढ़ा दिया और तीर निकाल कर कमान की डोरी से लगा कर उस वन के स्वतन्त्र प्राणी पर अपना निशाना साध लिया। परन्तु होनी के आगे अपना कुछ नहीं चलता। अर्थात् वह वन्य प्राणी उन वीरों के चाल चक्र और उसको विछाए गए काल-चक्र से बच निकला और दूर जा कर जंगल के सौन्दर्य में एक बार फिर खो गया, कमान से निकला वह तीर एक पेड़ से टकरा कर गिर गया और निशाना बेकार रहा। अपनी इस असफलता पर उन वीरों को गुस्सा आया और अपने में ही अपमानित होकर अपने आपको कोसने लगे। परन्तु फिर एक विश्वास जागा और थोड़ी दूर चलने के बाद उन्हें उसी जंगल में एक आवाज सुनाई पड़ी। उन्होंने शब्द-भेदी बाण निकाल कर उस दिशा की ओर जहां से आहट आ रही थी, निशाना साध कर कमान से तीर छोड़ा। परन्तु अनहोनी घटनाएं जब घटित होती हैं तो बुद्धि भी विलीन हो जाती है। वह तीर उस आहट में हिरण समझ कर साधा गया, वन में अपने जीवन की मोक्ष प्राप्ति और भगवान के दर्शन करने हेतु तपस्या कर रहे

एक तपस्वी के सीने को चीर गया। उसकी दर्द भरी कराह को सुन कर चारों भाई जब उसके पास गए तो अपने किए हुए का पश्चाताप करने लगे।

कराहते हुए उस तपस्वी की आंखों से जल धारा बहने लगी और उसने कहा, वीरो तुमने मुझे मार कर अच्छा नहीं किया। जो कुछ हुआ वह होनी थी, यदि तुम इस पाप का फल भोगना चाहते हो तो ठीक है, तुम यहीं रहो। यदि तुम इससे मुक्त होना चाहते हो तो अभी इसी समय बिना रणत्रास को गए यहां से उत्तराखण्ड के लिए रवाना हो जाओ। वहीं पर तुम्हें इस पाप से मुक्ति मिल जाएगी और उत्तराखण्ड में ही तुम्हें राज सम्मान मिलेगा।

उस तपस्वी की वाणी सुन कर वे चारों भाई उत्तरखण्ड की ओर चल पड़े। चलने से पहले उन्होंने उस तपस्वी का अन्तिम संस्कार किया। चारों भाई चलते-चलते उत्तराखण्ड के वर्तमान प्रदेश हिमाचल के जिला शिमला के नगर नामक स्थान पर आए। उस समय 'नगर' रामपुर बुशैहर में नहीं था परन्तु उसकी राजधानी शोली थी, शोली का राजा भम्बुराय हुआ करता था। अपने तप, पराक्रम से उसने देवता को जीत लिया था। लेकिन राजा भम्बुराय को अपने बल पर अभिमान हो गया था। इस अभिमान ने उसे राक्षस बना दिया था। उस राजा ने अपने शिकारियों को आदेश दिया था कि वे उसे हर रोज सुबह नाश्ते के लिए मांस पेश किया करें और कहा था कि उसे शिकार इस तरह का लाना कि जिन्दा मारना नहीं मरा हुआ लाना नहीं और खाली वापिस आना नहीं। उसके इस आदेश ने उन शिकारियों को समस्या में डाल दिया, फलस्वरूप उन शिकारियों ने वहां की नारियों के यकतरफा वक्ष को काटना शरू कर दिया।

इन नारी वक्षों को वे शिकारी राजा भम्बुराय के पास ले जाते थे जिससे वे उसका नाश्ता करवाते थे। इस अत्याचार से शोली और आसपास की जनता में राजा के प्रति एक विद्रोह की भावना आ गई। परन्तु राजा भम्बुराय की शक्ति के आगे वे कुछ भी न कर सके। वक्ष काटने का यह सिलसिला चलता रहा, और लोग दुःखी थे। उसके बाद इसी प्रकार का यह अत्याचार और हुआ एक बार एक औरत अपने ससुराल से पुननः नामक स्थान से अपने मायके को आ रही थी उस नारी को मायके तक आने के लिए एक लम्बा रास्ता पार करना था। औरत गर्भवती थी। जब वह जंगल पार कर रही थी उसे राजा के शिकारी राह चलते मिल गए, उन शिकारियों ने उस पर आक्रमण कर दिया और उसका वक्ष काट कर राक्षस राजा के नाश्ते के लिए पेश किया गया।

उक्त औरत अपने वक्ष हानि के बाद अपने मायके गई उसने सारी घटना अपने माता-पिता, भाई-बहन व सम्बन्धियों को बताई और फिर चल कर वापिस अपने ससुराल आ गई, उस नारी ने अपना बायां हाथ कटे हुए वक्ष स्थल पर रखा। परन्तु ज्यों ही उसने अपना हाथ वक्ष स्थल से हटाया तो उसकी आत्मा शरीर से निकल कर भगवान को प्यारी हो गई और शरीर धराशायी हो गया। इस घटना से तो लोगों में आक्रोश फैल गया।

प्राचीन मनुष्य देवताओं पर आस्था रखते थे, इसलिए उन्होंने गांव की सार्वजनिक बैठक बुलाई तथा उस विघटना को अपने ईष्ट देवता झागरू से बताया और देवता से न्याय की मांग की।

उन दुःखद मनुष्य की दयनीय बात सुन कर देवता ने कहा कि मैं इस राजा का काम तमाम कर रहा हूं, परन्तु कृपा मेरी होगी और वक्त तुम्हें सम्भालना पड़ेगा। भागरू देवता की बात से पुननः के लोग सहमत हो गए और हर काम को दिल जान से करने के लिए तैयार हो गए। अनायास उस सभा में वह चारों वीर भाई उस गांव में पहुंच गए। उन वीरों ने उस विराट सभा को देखकर विचार किया कि क्यों न उपस्थित लोगों से पूछा जाए कि क्या मामला है। जब राजा भम्बुराय की कलिष्ठ नीति उन भाइयों को बताई गई तो उन्होंने उस घटना से अपनी गहरी संवेदना प्रकट करते हुए उन्हें आश्वासन दिया कि हम इस अत्याचारी को समाप्त कर देंगे। उन चारों योद्धाओं ने लोगों को पूरी योजना बताई और समझा बुझा कर एक घोर अत्याचार को समाप्त करने के लिए कदम उठाया।

शोली में हर बारह वर्ष के बाद मेला 'भुण्डा' लगा करता था उस मेले में नर बलि हुआ करती थी। उस मेले का उद्घाटन बहुत ही शोभनीय होता था। मेले लगने से पहले अथवा नर बलि से पहले शुद्ध देसी घी में पकवान बनाए जाते थे। उन चार वीरों की बताई हुई विधि उपयोग होने लगी। राजा भम्बुराय मेला देखने के लिए अपने परिवार सहित भबुराय टीले पर आ पहुंचा। मेले की तैयारी करने के बाद आग की जल रही भट्ठी पर एक कड़ाही रखी गई जिसमें घी गर्म करने डाला गया। राजा से प्रथम आहूति देकर मेले का शुभ आरम्भ करने का आग्रह किया, राजा आहूति देने आ गया योजना के अनुसार बिद्वानों ने राजा भम्बुराय से घी की उबल रही कड़ाही में मुंह देखकर आहुति देने को कहा। जिसे राजा ने स्वीकार कर लिया। शायद उसकी स्वीकारता केवल देवता श्री भागरू की ही कृपा थी, जिसके बल से राजा की बुद्धि विलीन हो गई और राजा ने कड़ाही में देखना शुरू कर दिया। ज्यों ही राजा ने देखा तो उन चार भाइयों में से बड़े भाई कीर्तिसिंह ने राजा भम्बुराय का कड़ाही में झुका हुआ सिर तलवार की धार का निशाना बनाकर उबलते हुए घी में डाल कर एक अत्याचारी का अन्त कर दिया। इस अद्भुत और अनूठे कारनामे से तथा अत्याचार की समाप्ति पर शोली के लोग झूम उठे और चारों भाइयों की जय-जयकार होने लगी। उन्हें वहीं पर रहने को कहा गया और जागीर दे दी गई। अपनी सूझ-बूझ एवं पराक्रम से चारों भाइयों ने काफी मात्रा में जायदाद एकत्र करली और बाद में वहीं से उनका बंटवार हो गया उन में से तीन भाइयो को कोटखाई, करागणा और खनेटी दी गई एक भाई को मधावनी नामक जगह दी गई। कीर्तिसिंह मधावनी आ गया और अपने सहयोगियों के साथ वहां रहने लगा।

एक दिन राय अपने सहयोगी और एक पालतू बिल्ली सहित मधावनी से कुमारसैन की ओर शिकार खेलने चले, परन्तु ज्यों ही कीर्तिसिंह कुमारसैन, जहां उस समय कुम्हारों की बस्ती थी, पर आए तो एक अनोखे चमत्कार ने उनकी आंखों को चमका दिया। उस धरती पर जहां आज राजा कुमारसैन का महल है, पर कीर्तिसिंह के आने पर जमीन फट गई और उस में से एक सफेद रंग का चूहा निकला जिसने कीर्तिसिंह की पालतू बिल्ली पर आक्रमण कर उसे मौत के घाट उतार दिया। कीर्तिसिंह इसे देख कर चकित हो गए और इसके बारे में विद्वानों से पूछा। पण्डितों ने कहा कि महाराज जब संसार में किसी विशेष स्थान पर, जहां के दस्तूर से उलट कोई घटना होती है तो वह जगह किसी वीर पराक्रमी के रहने का स्थान होता है। इसलिए आप इन कुम्हारों से कहो कि वह यहां से कहीं दूसरी जगह पर निवास करे। परन्तु कुम्हारों ने कीर्तिसिंह के आग्रह को ठुकरा दिया।

एक दिन कीर्तिसिंह सतलुज नदी में स्नान करने लुहरी नामक स्थान पर आ पहुंचे, ज्यों ही वह स्नान कर मठोली नामक जगह पर आए तो उन्हें एक सांप रूपी देवता ने दर्शन देकर कृतार्थ किया। वह सांप रूपी देवता कुमारसैन का इष्ट देवता था। यहां पर इसी देवता का शासन हुआ करता था और कुमारसैन के लोग इस इष्ट देवता की श्री कोटेश्वर महादेव के नाम से पूजा करते थे और आज भी श्री महादेव पर आस्था है। श्री कोटेश्वर महादेव के दृष्टान्त के बाद श्री देव ने कीर्तिसिंह से राज-सत्ता के बारे में कहा, मुझे तुम्हारे जैसे वीर पराक्रमियों की आवश्यकता है और मैं तुम्हें कुमारसैन का राज पाट देता हूं। कीर्तिसिंह ने देवता श्री कोटेश्वर के सामने कसम खाई कि वह देवता को अपने तन, मन और आत्मा से इष्ट मानेगा और उसे कुमारसैन के राजसिंहासन पर पहला स्थान देगा तथा भविष्य में अपने इष्ट के प्रति कोई ऐसा कदम नहीं उठाऊंगा जिससे श्री कोटेश्वर महादेव की मान हानि हो।

श्री कोटेश्वर महादेव ने कीर्तिसिंह से कहा कि तुमने अपने रहने का जो स्थान चुना है वह स्थान तुम्हारे लिए उचित है। कीर्तिसिंह ने देवता से कहा कि कुम्हार इस स्थान को छोड़ने का नाम तक नहीं लेते। तब श्री महादेव ने कहा कि मैं इस कार्य को पूरा करूंगा तुम निश्चिन्त रहो। श्री कोटेश्वर के पैंगम्बर पर देवता ने प्रवेश पाया और पैंगम्बर ने कुम्हारों से वहां से चले जाने को कहा। देवता की बात इन कुम्हारों नहीं मानी। तब श्री कोटेश्वर महादेव ने रुष्ट होकर उनके वंश का सर्वनाश कर दिया। केवल एक कुम्हारी बची जो एक आंख से कानी थी। कुम्हारी के साथ उसका पति भी था। देवता के प्रकोप के भय के कारण वह कुम्हार परिवार भी उस स्थान से उठ कर चला गया। उस स्थान पर श्री कोटेश्वर महादेव के आदेशानुसार कीर्तिसिंह ने महल बना दिया। कुम्हार का परिवार उस कानी कुम्हारी सहित भराड़ा नामक स्थान पर चला गया, जहां पर श्री महादेव जी की कृपा से उस कानी कुम्हारी को छः सन्तानों का वरदान मिला। उसी कारण आज कुमारसैन के लोगों को 'काणा कुमारसना' कहा जाता है।

कीर्तिसिंह महल बना कर श्री कोटेश्वर महादेव की आज्ञा से ही कुमारसैन का राज्य सम्भाल लिया और राज-तिलक माथे पर लगा लिया। आज भी कुमारसैन की गद्दी पर पहला स्थान श्री कोटेश्वर महादेव का ही है। श्री कोटेश्वर ने अपना राज्य कीर्तिसिंह को सौंप कर कुमारसैन का राजा बनाया। श्री महादेव और कीर्तिसिंह के पराक्रम से ही कुमारसैन में राजा आया और पहला राजा कीर्तिसिंह हुआ।

श्री महादेव ने कीर्तिसिंह को राज-सत्ता सम्भाल कर मठोली में जन कल्याण हेतु आ गए। राजा कीर्तिसिंह ने आदेश दिया कि जब कभी राज तिलक होगा तो देवता का रथ सुसज्जित होकर सारी रियासत में धूम धाम से घूमाया जाएगा जिसका खर्च राज-खजाना देगा। इस राजतिलक के बाद तीन दिन का राम्वी मेला लगता था। राज तिलक के इस मेले को रजावड़ मेला कहा जाता था। श्री महादेव की नाहल से हिन्दू धर्मानुसार शादी होती थी। जिसका संकेत यह होता था कि अब कुमारसैन के सिंहासन पर नया राजा विद्यमान हो गया है।

श्री कोटेश्वर कृपा निवास,
गा० एवं डा० किंगल,
जिला शिमला (हि०प्र०)।

कांगड़ी बोली में सर्वनाम का प्रयोग
(समाज भाषा-विज्ञान की दृष्टि से)

—मधु बाला

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है समाज में रहने वाले विभिन्न प्राणियों से उसके विभिन्न सम्बन्ध हैं। इन्हीं सम्बन्धों के अनुसार वह सम्बोधन के लिए विभिन्न औपचारिक एवं अनुपचारिक विधियों का प्रयोग करता है, क्यों करता है, और कैसे करता है। इस ओर सामाजिक प्राणी ध्यान नहीं देते। केवल भाषा बोलना ही उनके जीवन का एक मात्र उद्देश्य है। भाषा वैज्ञानिकों का इस ओर ध्यान आकर्षित हुआ और उन्होंने इस विषय का अध्ययन किया। इसी उद्देश्य को लेकर कांगड़ी बोली में समाज भाषा-विज्ञान की दृष्टि से सर्वनाम के प्रयोग का अध्ययन किया गया है।

सर्वनाम निर्धारण विभिन्न सामाजिक तत्व :

सर्वनामों का अध्ययन करने से पहले, उन विभिन्न सामाजिक तत्वों का अध्ययन अनिवार्य है जो सर्वनाम के प्रयोग को निर्धारित करते हैं, जैसे—आयु, स्तर, जाति, लिंग इत्यादि। औपचारिक व अनुपचारिक सर्वनामों का प्रयोग इन्हीं तत्वों पर आधारित है। औपचारिक सर्वनाम का प्रयोग उस स्थिति में सम्भव है जबकि दूसरा व्यक्ति, आयु, स्तर, जाति आदि सामाजिक तत्वों में उच्च है। लेकिन अगर व्यक्ति आयु में बड़ा है और उसका स्तर समाज में नीचा है तो उसके लिए अनुपचारिक सर्वनाम का प्रयोग सम्भव है। इन सभी तत्वों में आपस में समानता पाई जाती है। क्योंकि इनका कार्य एक दूसरे के लिए भी हो सकता है। अगर एक व्यक्ति आयु में छोटा है लेकिन स्तर उच्च होने की वजह से उसके लिए औपचारिक सर्वनाम का प्रयोग किया जाता है। इसी प्रकार यदि निम्न जाति के व्यक्ति का स्तर ऊंचा है तो उसके लिए भी औपचारिक सर्वनाम का प्रयोग किया जाता है यदि सभी तत्व एक जैसा कार्य कर रहे हैं जैसे आयु में बड़ा, स्तर में उच्च, जाति में उच्च उसके लिए औपचारिक सर्वनाम का प्रयोग स्वाभाविक होगा।

सन्दर्भ का अध्ययन :

सर्वनाम निर्धारण तत्वों के साथ-साथ संदर्भ का अध्ययन भी आवश्यक है। किस विशेष संदर्भ में किस सर्वनाम का प्रयोग हो रहा है, क्यों हो रहा है और किस के लिए हो रहा है। उदाहरण के लिए पिता पुत्र के लिए अनौपचारिक सर्वनाम 'तू' का ही प्रयोग करता है परन्तु वह विशेष संदर्भ में 'तू' के स्थान पर 'तुसां' का प्रयोग करता है। अब प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि वह 'तुसां' का प्रयोग कौन से संदर्भ में करता है। जैसे—जब वह पुत्र पर व्यंग्य कसना चाहे

ग्रौर उसके प्रति ग्रत्यधिक प्यार का प्रदर्शन करे तो वह ग्रौपचारिक सर्वनाम का प्रयोग करता है। इसी तरह पुत्र पिता के लिए ग्रौपचारिक से ग्रनुपचारिक सर्वनाम के प्रयोग पर पहुंच जाता है। यह तब सम्भव है जब पिता ग्रौर पुत्र में लड़ाई झगड़ा व मन-मुटाव हो जाए। इस लिए सर्वनाम के प्रयोग के ग्रध्ययन से पता चलता है कि सर्वनाम दो तरह के ग्रर्थों को प्रदर्शित करते हैं :

१. एक तो विशेष संदर्भ में प्रयोग होने वाले सर्वनाम के ग्रर्थों को।

२. दूसरा साधारण स्थिति में प्रयोग होने वाले सर्वनाम के ग्रर्थ को।

सर्वनाम व क्रियाएं :

कांगड़ी बोली में हमें दो प्रकार के सर्वनाम मिलते हैं। १ तूं २ तुसां। 'तू' ग्रनुपचारिक सर्वनाम है व 'तुसां' ग्रौपचारिक। इन दो सर्वनामों के साथ प्रयुक्त होने वाली निम्नलिखित क्रियाएं हैं :

तू —ग्रा → क्रिया+
तू —ग्रौना → क्रिया+ना
तू —ग्रोग्रा → क्रिया+ग्रा
तुसां —ग्रान्नयों → क्रिया+न्नयों
तुसां —ग्रौना → क्रिया+ना
तुसां —ग्रोग्रा → क्रिया+ग्रा

केवल दो क्रियाएं ही ऐसी हैं जिनका प्रयोग एक दूसरे के स्थान पर सम्भव नहीं जैसे : 'ग्रा', ग्रान्नयों।

तू	ग्रा
तू ग्रौर तुसां	ग्रौना ग्रोग्रा
तुसां	ग्रान्नयों

'ग्रौना' ग्रौर 'ग्रोग्रा' का प्रयोग एक दूसरे के स्थान पर सम्भव है ग्रौर दोनों के लिए किसी भी सर्वनाम का प्रयोग हो सकता है। इस लिए जब ग्रादरभाव प्रकट करना हो, तो सर्वनाम 'तुसां' का ही प्रयोग होगा। परन्तु क्रिया में परिवर्तन नहीं होगा। क्रिया वही रहेगी जो सर्वनाम 'तू' के साथ प्रयोग में लाई जाती है। इस प्रकार क्रिया में ग्रपरिवर्तन ग्रौर सर्वनामों में परिवर्तन से ग्रर्थ में थोड़ा सा परिवर्तन हो जाता है, जो ग्रौपचारिक व ग्रनुपचारिक भाव को प्रकट करता है।

क्रिया व काल में सम्बन्ध :

क्रिया व काल में गूढ़ सम्बन्ध है, सर्वनाम के साथ प्रयोग होने वाली क्रिया के प्रयोग से हमें यह मालूम होता है कि वह कार्य करने के कौन से समय को प्रदर्शित कर रही है। जिस तरह उदाहरण के तौर पर सर्वनाम 'तू' का प्रयोग क्रिया 'ग्रा' ग्रौर 'ग्रोग्रा' से हो रहा है। 'ग्रा' ग्रौर

'ओआ' क्रिया उसी समय कार्य करने का प्रकट कर रही है। इसी प्रकार सर्वनाम 'तू' के साथ क्रिया 'ओआ' का प्रयोग तत्कालीन कार्य को प्रकट करता है। 'तू' का प्रयोग 'ओना' से 'तुसां' का प्रयोग 'ओना' व 'आन्नयों' से कार्य के समय में अन्तर को प्रकट करता है। (कि अभी नहीं जब तुम्हें समय मिले तब आना।)

तू [आ, ओआ] =तत्कालीन कार्य
तुसां [ओआ] =तत्कालीन कार्य
तू [ओना] =कार्य के समय में कुछ अन्तर
तुसां [औना, आन्नयो] =कार्य के समय में कुछ अन्तर

इसी लिए क्रिया का सम्बन्ध सामाजिक अर्थ में नहीं है, बल्कि कार्य काल से सम्बन्धित है।

सर्वनाम व क्रियाओं में सम्बन्ध :

जिस प्रकार क्रिया काल से सम्बन्धित है उसी प्रकार क्रियाएं सर्वनाम से भी सम्बन्धित हैं। जिस तरह क्रिया 'आ' का प्रयोग तू के साथ ही सम्भव है तुसां' के साथ नहीं और क्रिया आन्नयो का सम्बन्ध 'तुसां' के साथ सम्भव है तू के साथ नहीं। तो इस सर्वनाम और क्रियाओं की सरचना से हम इसी निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि सर्वनाम और क्रिया में सम्बन्ध है इसी कारण वह एक दूसरे के स्थान पर प्रयुक्त नहीं हो सकते। लेकिन यहां पर एक प्रश्न उत्पन्न होता है वह यह कि क्रियाओं के अर्थों में अन्तर है। 'तुसां' के साथ प्रयुक्त होने वाली क्रिया 'आन्नयो' समय के अन्तर को और तू के साथ प्रयुक्त होने वाली क्रिया 'आ' तत्कालीन कार्य को प्रदर्शित करती है। तत्कालीन कार्य के लिए अन्य एक प्रयुक्त होने वाली क्रिया का सम्बन्ध 'तू' से भी है और 'तुसां' से भी और उसका प्रयोग तुसां के साथ विशेष संदर्भ में होता है। अतः क्रिया का प्रयोग विशेष सर्वनाम के साथ विशेष सन्दर्भ में काल के अनुसार होता है।

क्रियाओं में आपसी सम्बन्ध :

क्रियाओं का आपस में भी गूढ़ सम्बन्ध है हमें 'तू' 'तुसां' सर्वनामों के साथ तीन-तीन प्रकार की क्रियाएं देखने को मिलती हैं।

तू+आ तुसा+आन्नयो
[तू+औना / तू+ओआ] [तुसा+औना / तुसा+ओआ]

यहां पर सर्वनाम के प्रयोग में कोई अन्तर नहीं है। अगर अन्तर है तो केवल विभिन्न क्रियाओं के प्रयोग में। 'तू' के साथ प्रयुक्त होने वाली क्रिया नजदीकता को प्रदर्शित करती है। लेकिन 'तुसां' के साथ प्रयुक्त होने वाली क्रिया आदरभाव को प्रकट करती इसी लिए हमें 'तुसां' के साथ प्रयुक्त होने वाली क्रिया में ज्यादा नजदीकीपन की झलक नहीं मिलती वह दो क्रियाएं जिन की स्थिति मध्य की स्थिति है, वह न तो ज्यादा नजदीकीपन को और न ही ज्यादा आदर प्रभाव को प्रकट करती है। जैसे धोबी, दुकानदार, दूध वाले के लिए इन क्रियाओं का प्रयोग और सर्वनाम का चुनाव सामाजिक तत्वों के अनुसार किया जाता है।

सोमसी

सर्वनाम का सम्बोधन से सम्बन्ध :

सर्वनाम का सम्बोधन से भी सम्बन्ध है। सम्बोधन के प्रयोग से हमें यह पता चलता है कि बोलने और सुनने वाले को क्या सामाजिक रिश्ता है और कौन से सन्दर्भ में किस सम्बोधन शब्द का प्रयोग कर रहा है। केवल सम्बोधन शब्द के प्रयोग से ही सर्वनाम का अनुमान लगाया जा सकता है, जिस प्रकार इस उदाहरण से स्पष्ट है। पिता अपने पुत्र को उसके नाम 'बाबूराम से सम्बोधित कर रहा है। "कैह बाबू रामा इन्नां बदर्दी बणी गिया।" क्यों बाबू राम इतना बेदर्दी बन गया है। यद्यपि प्रस्तुत उदाहरण में केवल सम्बोधन 'नाम' का ही प्रयोग है। इसी से हमें पता चलता है कि पिता पुत्र के लिए अनौपचारिक सर्वनाम 'तू' का ही प्रयोग कर रहा है। सम्बोधन शब्द की तरह ही क्रिया से भी सर्वनाम का पता चल जाता है कि औपचारिक सर्वनाम का प्रयोग किया गया है व अनुपचारिक। जैसे उदाहरणतया :

(तू) मुन्डुए मेरे बल देई दे—लड़के को मुझे दे दे।

(तुसां) मुन्डुए मेरे बल देई देया- लड़के को मुझे दे दो।

क्रिया 'दे' और 'देया' से स्पष्ट है कि 'दे' के साथ तू का प्रयोग 'देया' के साथ 'तुसां' का प्रयोग सम्भव है।

पुत्र अपने पिता के लिए औपचारिक सम्बोधन 'बापू जी' का प्रयोग कर रहा है तो यह निश्चित है कि यहां पर औपचारिक सर्वनाम का ही प्रयोग होगा। जैसे—'बापू जी इसा जो (तुसां) सम्भाली लैनियों।' बापू जी इसे आप सम्भाल लेना।

इसी प्रकार विभिन्न पारिवारिक, सामाजिक, व्यवसायिक रिश्तों के अनुसार विभिन्न सम्बोधन शब्दों का प्रयोग होता है। उन्हीं सम्बोधन शब्दों से हम अनुमान लगा सकते हैं कि औपचारिक सर्वनाम का प्रयोग होगा या अनुपचारिक। यदि औपचारिक सम्बोधन का प्रयोग हो रहा है, तो सर्वनाम भी औपचारिक होगा और यदि अनुपचारिक सम्बोधन का प्रयोग हो रहा है तो सर्वनाम भी अनुपचारिक ही होगा।

कुछ सामाजिक रिश्ते ऐसे हैं, जिस प्रकार दो अजनबी व्यक्तियों का रिश्ता, दोनों एक दूसरे से बिल्कुल परिचित नहीं है। इसीलिए ऐसी स्थिति में जबकि वह एक दूसरे का नाम भी नहीं जानते वह केवल औपचारिक सर्वनाम का ही अधिकांश प्रयोग करते हैं। इस प्रकार जहां पर सम्बोधन शब्दों के व्यवहार में कठिनाई उत्पन्न होती है, वहां पर सर्वनाम के प्रयोग की ही मदद ली जाती है।

कुछ पारिवारिक रिश्ते ऐसे हैं जिन में एक दूसरे का नाम लेना वर्जित है। जैसे पत्नी द्वारा पति का, बहू द्वारा अपने सास-ससुर, जेठ व जठानी का नाम लेना उचित नहीं समझा जाता है। भारतीय संस्कृति में इन सभी रिश्तों के लिए नाम द्वारा सम्बोधित न करने की प्रवृति पुरातनकाल से चली आ रही है। नाम द्वारा सम्बोधित न करने की प्रवृति आदरभाव के प्रकटाव से सम्बधित है। ऐसी स्थिति में भी सर्वनाम के प्रयोग से ही काम चलाया जाता है। साधारण स्थिति में औपचारिक सर्वनाम का ही प्रयोग होता है। लेकिन क्रोध की स्थिति में सर्वनाम के

प्रयोग में अनुपचारिकता आ जाती है, जो निम्नलिखित उदाहरण से पत्नी द्वारा अपने पति के लिए स्पष्ट है। 'किछ दस्सा बी, एइयां कजो मुंह लटकाई ने खड़ोतयो हन।' कुछ भी बताओ इस तरह क्यों मुंह लटकाए खड़े हो।

ऊपर दिया गया उदाहरण औपचारिकता को स्पष्ट करता है लेकिन क्रोधित की स्थिति में अनुपचारिकता इस उदाहरण द्वारा स्पष्ट है। 'तू मेरे घरे सर्प पाल कन्ने मैं जिकर भी नां करूं।' तू मेरे घर सांप पाले और मैं बताऊं भी ना।

इसी प्रकार जीवन में विभिन्न परिवर्तित स्थितियों में सुनने और कहने वालों में सामाजिक तत्वों के अनुसार परिवर्तन होता रहता है। उनमें एक नये रिश्ते के साथ नयापन आता रहता है। पारिवारिक सम्बन्धों में परिवर्तन कुछ हद तक स्थिर ही रहता है, लेकिन अन्य सामाजिक व व्यवसायिक सम्बन्धों में परिवर्तन निश्चित है। परिवर्तन का मुख्य कारण शिक्षा का फैलाव, जात-पात व छुआ-छूत का विरोध, उद्योगीकरण द्वारा मनुष्यों की आर्थिक स्थिति में परिवर्तन, यातायात के साधनों में सुधार है। इन सभी कारणों से मनुष्यों में एकाग्रता का रूप उत्पन्न हो रहा है। वह अपने अधिकारों को समझने लगे हैं और आर्थिक दृष्टि से काफी अच्छे हो गए हैं। इस परिवर्तनशील समाज में रहने वाले मनुष्यों के व्यवहार में परिवर्तन निश्चित है जो विभिन्न सम्बोधन शब्दों व सर्वनाम के प्रयोग से सम्बन्धित है।

उत्तर क्षेत्रीय भाषा केन्द्र
पंजाबी यूनिवर्सिटी,
पटियाला।

पहाड़ी चश्मों की सजावट
पनघट के पत्थर

–अशोक जयरथ

पहाड़ों में जीवन है, उमंग हैं और सबसे ऊपर वह तिलस्मि संसार है जिसके रहस्यों को अभी तक मानव खोल नहीं सका है। पहाड़ों में दिखरी लोक-गाथाएं, लोक कला-कृतियां और रचनात्मक के अजस्र स्रोत हैं, जिनकी कामना हर रचनाकार के मन में रहती है। कहते हैं प्रथम कलाकार का जन्म भी पहाड़ों में ही हुआ था।

इन पर्वतीय श्रृंखलाओं में हरे कालीन को फाड़ कर स्थान-स्थान पर चश्में उबल पड़ते हैं। जब ये चश्में किसी गांव के आस-पास हों तो इनके चारों ओर पत्थरों से मुण्डेरें बना दी जाती हैं और इन चश्मों को पक्का कर दिया जाता है। पहाड़ों में यह पक्के चश्में 'बावड़ी' कहलाते हैं। इन पक्के चश्मों को बाद में ग्रामप्रान्टर के उन्नायक, अमीर आदमी आदि सजाते हैं। अकसर यह अकांक्षा हर गांव के अमीर व्यक्ति के मन में रहती थी कि वह कम से कम एक खुदा हुआ पत्थर गांव की बावड़ी पर अवश्य लगवाए। अतः वह अपनी समर्थानुसार गांव में मिस्त्री को बुलाकर अपनी इच्छानुसार कोई न कोई देवी-देवता, जीव-जन्तु, वृक्ष आदि का आकार पत्थर पर खुदाकर स्वयं अपने हाथ से चश्में पर लगवाकर धन्य हो जाता। इस प्रकार सदियों से चलता आ रहा यह लोक व्यवहार पहाड़ों को अनायास ही अनेक कला कृतियों का अजस्र स्रोत बना गया है। ये कला कृतियां धीरे-धीरे पहाड़ों की तराईयों से उठा कर नगरों में ले जाई जा रही हैं जहां उनका मूल्य पड़ता है।

विषय :

अक्सर चश्मों पर लगे पत्थरों पर देवी देवताओं, जल-मोटिफ, स्थानीय परम्पराओं, अनुष्ठानों आदि को लेकर मूर्तियां खुदी होती हैं।

विष्णु नाभि से निकले कमल पर ब्रह्म बलि अवतार, मत्स्य अवतार, गणेश गणपति आदि देवी देवता, यक्ष यक्षिणी और जल-कुम्भ लिए जल परियां, पालकी में सवार सुन्दरियां, कहार, दुल्हा, दुल्हन आदि, नाग, शिव पार्वती आदि की मूर्तियां बहुताहत से इन चश्मों के पत्थरों पर उकेरी जाती हैं। वृक्षों में देवदार के आकार के नुकीले वृक्षों के प्रतिबिम्ब, बेलें, फूल, पत्तियां आदि सजाने के लिए उकेरी जाती हैं। इनके इलावा स्थानीय अनुष्ठानों, देवी देवताओं को लेकर

भी अनेक बार मूर्तियां उकेरी जाती रही हैं। डुग्गर प्रान्तर में दौड़ते हुए घुड़ सवार, लड़ती हुई सेनाएं, मस्त हाथियों के युद्ध, आदि प्रचुर मात्रा में दर्शाए गए हैं।

पत्थर और उनकी पैमायश :

अक्सर इन मूर्तियों की खुदाई के लिए रेतीले पत्थरों का प्रयोग होता है। ये दो प्रकार के पत्थर होते हैं काले और भूरे। काले पत्थर शिवालिक पहाड़ों की ही देन हैं जबकि भूरे पत्थर बाहर से भी लाए जाते रहे हैं। इन पत्थरों को लम्बी शीटों के रूप में काटा जाता है और उनके मुरब्बा टुकड़े बनाए जाते हैं। अक्सर ये टुकड़े एक फुट × एक फुट के होते हैं पर कभी-कभी पूरी शीट को भी प्रयोग किया जाता है। चूंकि ये मूतियां दो सतहों को लेकर बनाई जाती हैं अतः इन पत्थरों का क्यूब होना जरुरी नहीं। चपटी चार-पांच ईंच मोटी स्लैब से भी काम चल जाता है। इन पत्थरों को बड़ी सावधानी से चश्मों के पास लाया जाता था, जहां मिस्त्री-कलाकार आदि इन पर काम शुरु कर देते। छैनी और हथौड़े के कमाल से एक स्लेब को जीवन्त रूप देना असम्भव नहीं तो दुरूह अवश्य है पर यह जीवन्त कार्य आज तक अपने समग्र रूप के साथ पहाड़ों में बिखरा पड़ा है।

कलाकार :

डुग्गर धरती पर ये मिस्त्री और कलाकार एक विशेष परिवार से सम्बन्धित होते थे। इन्हें स्लैड़े या बटैड़े कहा जाता था। 'स्लैड़े' शब्द सिल अर्थात् चट्टान से सम्बन्धित है। अर्थात् ऐसे लोग जो चट्टानों पर नकाशी करते हैं। 'बटैड़े' शब्द 'बट्टा' अर्थात् पत्थर से सम्बन्धित है, जो लोग पत्थर पर उत्कीर्ण करते थे उन्हें बटैड़े कहा जाता है। इन लोगों को बड़े सम्मान की दृष्टि से देखा जाता और अक्सर ब्राह्मणों के बराबर इनका सम्मान किया जाता। चूंकि इसके लिए राजे, रजवाड़े, जमींदार और अमीर लोग आदि इन लोगों को प्रोत्साहित करते रहते, इन्हें इनकी उजरत के साथ-साथ इनाम के तौर पर खूब धन दौलत देकर सम्मानित किया जाता। अतः इन्हें और किसी जिविका पर निर्भर नहीं रहना पड़ता था। ये लोग खुशहाल थे। पर धीरे-धीरे राजतन्त्र और रजवाड़े टूटने लगे। लोगों का आकर्षक इस ओर समाप्त हो गया। ग्राम प्रान्तर वीरान हो गए। लोग शहरों में आकर बसने लगे। हर अमीर व्यक्ति की अकांक्षा होती कि वह अपना लेन देन शहर में करे अतः ये लोक कलाकार निरुत्साहित होकर शहरों को चले आए और वास्तुकला में अपना योगदान देने लगे। इस तरह भीड़ में अपने अस्तित्व को खो बैठे। इनकी सन्तानें तो अपना पैतृक कार्य छोड़कर अनेक दूसरे कार्यों में लग गई हैं।

कलाकृतियों की सजीवता :

यद्यपि ये कलाकृतियां लोक कला के प्रकोष्ठ में रखी जाती हैं तथापि अपने सौन्दर्य, कलाकारों की निपुणता, प्रतिभा और सूक्ष्म अभिव्यक्ति के कारण किसी भी ललित कलाकृति से कम नहीं आंकी जा सकती। मुझे पहाड़ों में इन कलाकृतियों को देखने, परखने और उनका अध्ययन करने का अवसर मिला है। मानों पत्थर न होकर देवता स्वयंभू प्रकट हुए हैं। इन मूर्तियों का उकेरना इतने सुन्दर ढंग से हुआ है कि नैननक्श, हाव भाव, तीखी रेखाओं द्वारा एक-एक अंग पूरी

तरह उभर कर सामने आ गया। वक्त के थपेड़ों ने यद्यपि इन कलाकृतियों को बहुत नुक्सान पहुंचाया है तथापि इन वक्त के थपेड़ों को लांघ कर भी कुछ कला कृतियां आज भी अपनी सजीवता रखे हुए हैं। उधमपुर के पहाड़ी इलाकों में ऐसी मूर्तियों की भरमार है जिन्हें देखकर दर्शक किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो जाते हैं। सुद्ध महादेव की 'पापनाशी बां', चिन्हैनी की 'बड़ी बां', पन्चेरी की 'पुरानी बां', मीर की 'बां' आदि कुछेक उदाहरण लिए जा सकते हैं। 'बां' शब्द बावड़ी के लिए आया है। बावड़ी का ठेठ डोगरी करण 'बां' में हो गया है। इन स्थानों पर अब भी सुन्दर घटी हुई मूर्तियां अपनी समग्र सजीवता के साथ पर्यटकों, छात्रों और अनुसन्धित्सुओं को आकर्षित करती हैं। पन्चेरी की 'बां' के मंच पर बहुत सुन्दर उकेरे हुए घोड़ों की मूर्तियां हैं जिन पर डोगरी पगड़ी धारे घुड़ सवार आक्रमण की मुद्रा में स्थित है।। यह उत्कीर्ण कला का विशिष्ट रूप केवल यहीं उपलब्ध है। पन्चेरी बाजार से कोई आधा किलोमीटर नीचे कई टन मलबे के नीचे दबी हुई मूर्तियों का खजाना दबा पड़ा है। ये तीन फुट × दो फुट पैमायश की स्लैब पर उकेरी गई तीन भागों में सूक्ष्मता का अद्भुत नमूना है। एक ही स्लैब पर बीसों छोटी मोटी मूर्तियां अपनी सम्पूर्ण सूक्ष्मता के साथ तीन तहों में उकेरी गई हैं। ऐसी तीन स्लैबों को हम साफ कर पाए हैं। कहते हैं ऐसी १०८ स्लैबें एक ही खेत में दबी पड़ी हैं। स्थानीय लोग इन मूर्तियो को हाथ नहीं लगाने देते अपितु समझते हैं कि इससे वे इन देवताओं द्वारा अभिमानित होंगे। इस स्थान की दूसरी विशेषत: कुण्डी-सर्प की मूर्तियां हैं। नागपूजा हर ओर विद्यमान है। कहीं पर तो नाग साधारण तौर पर ही पत्थरों पर चट्टानों के टुकड़ों पर उकेरे जाते हैं। कहीं पर उन्हें बहुत सूक्ष्म तौर पर नक्काशी करते हुए घटा जाता है। पन्चेरी के पास ही एक स्थान 'अक्खड़' देवता का है जहां एक बहुत सुन्दर ऐसे ही नाग की आकृति एक 'सकेयर स्लैब' पर उकेरी गई है।

चोरी :

इन मूर्तियों की चोरी दिन-दिहाड़े होती रहती है। पिछली बार जिन बावड़ियों में ये मूर्तियां देखी थी वहीं इस बार उनकी संख्या कम हो गई पूछने पर कुछ भी पता नहीं चलता। इस तरह तो यह कला के सहस्र स्रोत खाली हो जाएगें और यहां से मूर्तियां गायब होकर लोगों के ड्राइंग रूमों में सजने लगेगी। इस ओर ध्यान दिलाना बहुत आवश्यक है। जरुरत है स्थानीय कला-प्रेषकों, पारखियों, पुरातत्व बिभाग आदि के कर्मचारियों तथा वहां के लोगों के सतर्क होने की। इसमें सब से बड़ी भूमिका समाचार पत्र और पत्रिकाएं ही निभा सकती हैं। इसी आशय से भी लिखने की प्रेरणा पा सका हूं।

१८१, मस्तगढ़,
जम्मू–भारत - १८०००१।

★●★

मास्ती कूजी

—पन्ना लाल जोगटा

लोक-गीत लोक-मानस की सहज अभिव्यक्ति, नूतन तथा पुरातन को जोड़ने वाली कड़ी एवम् ग्राम्य जीवन का एक स्वच्छ और निश्छल रूप श्रोताओं के समक्ष दृष्टव्य करने की भूमिका निभाते हैं। लोक गीत ही ग्राम्य जीवन के उद्भव एवं विकास के प्रेरणा-स्रोत हैं। इन गीतों के माध्यम से लोक-कवि अपने मन के भावों या उद्गारों को सर्वसाधारण तक पहुंचाने में व्यक्ति तथा समाज का प्रतिनिधित्व करता है। समय-समय पर लोक जीवन में घटी घटनाओं की जो सुन्दर अभिव्यक्ति हमें लोक गीतों द्वारा प्राप्त होती है वह किसी अन्य माध्यम से नहीं मिलती।

उपरोक्त कथन से स्पष्ट है कि ग्रामों में गाए जाने वाले गीतों का बाहुल्य है। ग्राम्य गीतों का प्रचलन जन्म-जन्मान्तर से चलता आ रहा है। लोक गीतों की इस निरन्तर कड़ी में से एक गीत पाठकों के समक्ष प्रस्तुत है।

सती कुप्रथा की बली वेदी पर चढ़ने वाली कुजी विरांगना जो इस मार्मिक एवं हृदय विदारक सती गीत की नायिका है, शिमला जिले के जुब्बल तहसील में ठाणा-मान्दल ग्राम की गांव वासिनी थी। इनके पिता खाण्डीया भोलाड़ ग्राम के निवासी थे तथा भ्राता का नाम रामघन था। अम्बी नामक व्यक्ति का नाम जिसकी ध्वनि बार-बार इस गीत की लय में गुंजती है। गीत का नायक एवं मास्ती कुजी का पति है। प्रदेश में उन दिनों अंग्रेजों का शासन था तथा सती होना एक घोर अपराध माना जाता था। मास्ती कुजी के सती होने पर तात्कालिक शासक अमरसेन इतने क्रुध एवं रुष्ट हुए थे कि उन्होंने दण्ड के रूप में ग्राम ठाणा-मान्दल को आग लगाने का आदेश दे दिया था। जिसका वर्णन गीत की निम्न पंक्तियों में उद्धृत है :

अमरसेना साहिबा कथरी रा बीणा,
ठाणा मान्दला दौणा रा हुकमा ढीणा।

अनुश्रुति है कि उनके कर्मचारी जब आग लगाने हेतू हाटेश्वरी देवी के मन्दिर के समीप पब्बर नदी पार करके ठाणा-मान्दल ग्राम की ओर अग्रसर होते थे तो वे अन्धे हो जाते थे लेकिन जब वे मुड़कर हाटकोटी की ओर देखते थे तो उन्हें सब कुछ दृष्टिगोचर होता था। दिन में भवन अग्नि से ध्वसत कर दिए जाते थे तो ग्रामवासी रातों-रात नये भवन का निर्माण कर देते थे। इस प्रकार भवन को अग्नि से नष्ट करने तथा रातों-रात भवन निर्माण का सात बार क्रम चलता रहा।

सती कुजी का पति अम्बी बकरों का व्यापार करने हेतू (जिसे लोक भाषा में 'राश' या 'हेड़' कहते हैं) सुदूर प्रदेश में गया। कुजी को पति के जाने से पूर्व अपशकुन होता है तथा वह अपने पति को प्रदेश जाने से रोकती है। अम्बी उसको मनवा कर शान्त करवा देता है तथा स्वयं बकरों को खरीदने चला जाता है। परन्तु बकरों को क्रय करने के पश्चात् जब वह घर को लौटता है तो जलवायु में परिवर्तन होने के कारण उन्हें ज्वर हो जाता है तथा घर आते ही अपनी धर्मपत्नी को बिस्तर के लिए कहता है। उस समय आकाश में गरुड़ पक्षी विवरण करते हैं जो लोक-मतानुसार अशुभ माना जाता है। इस मन्तव्य को लोक कवि ने निम्न पंक्तियों में प्रकट किया है :

शेलो पोशों ठण्कों नॉदा शिम्राम्रो,
चुले री पठोंईयां मेरे सौड़ा छियाम्रो।
गंणे रींगा गीरजा नेवला शीणे,
काला बारा अम्बीया पशाड़े दीणे।

सती कुजी ने जब देखा कि उसके पति के बचने की कोई भी आशा नहीं रही, तो वह अपने पति से सती होने का मन्तव्य प्रकट करती है लेकिन अम्त्री इसमें कई प्रकार की बाधायें एवं यातनाओं से धर्म पत्नि को समझाते हैं कि सति होना इतना सुगम नहीं है सती होते समय जलती आग में झुलसते समय शरीर में असह्य पीड़ा होती है। तुम्हारे पीहर भोलाड़ ग्रामवासी तुम्हें सती होने से रोकेंगे, परन्तु विरांगना कूजी सती होने में दृढ़ संकल्प एवं अटल विश्वास से अपने पतिदेव के हाथों में अपने कोमल हाथ समर्पित करते हुए उन्हें आश्वस्त करती हुई कहती है कि भभकती आग में मैं अपना शरीरान्त इस भान्ति करूंगी जिस प्रकार ऊन का धागा नाम-मात्र बल प्रयोग से टूट जाता है। मर्म को स्पर्श करने वाले पति-पत्नी सम्वाद का तनिक अवलोकन तो करें :

बॉठणीया कुजीया सुंचीय खा तेरा,
ओरु दे धरमा भौरिया मेरा।
कबला दिणा धरमा कोंला हाथा,
जा नूं हौले तेतड़ी जलूलो साथा।
तेरी हों भूषा रो भुजू न भेंम्रो,
मोढ़ तेरा मंची जलणें न देंम्रो।
मोढ़ लाऊ मंची खी ऐंजा रा तौरा,
जलणा न मरना खी कौसी रो डौरा।
जलणा जा मरना खी बानणी छाती,
आगे माझें जीऊंदी लागा ली ताती।
तैंवा परैणा बाबू खण्डीया रे धीया,
धागटू जेम्रा चोड़ू ला आपणा जीया।
दुःख न किछी चांहू तो सुखा रे जलू,
माची भोलाड़ू रे उजले करूं।

अपनी धर्मपत्नी के सती होने के दृढ़ संकल्प से आश्वस्त होकर अम्बी उनकी गोद में उपरोक्त सम्वाद का आदान-प्रदान करते-करते शरीर त्याग देता है। उधर कूंजी से सती होने की भव्य तैयारियां प्रारम्भ हो जाती है। सती के वाहन हेतू काठ का नाना प्रकार की चित्रकारियों से सुसज्जित "जुगटू" के निर्माण हेतू दूर-दूर से बढ़ई बुलाये गए। सति होने की तैयारियां पूर्ण होने के पश्चात मास्ती के वाहन को दर्शनार्थ खलियान में रखा जाता है। मास्ती के दर्शन के लिए इतनी भीड़ एकत्रित हो जाती है कि दूर-दूर दृष्टि दौड़ाने पर समस्त खेत मनुष्यों से खचाखच भर जाते हैं। तनिक लोक-कवि के भावों में आत्म विभोर हो जाएं :—

ढाकी–बाढ़ी सोइरी दोड़जी लागी,
खोला भाजा हौकदा भरुई बागी।

अन्त में मास्ती अपने परिवार के समस्त सदस्यों देवर, सास-ससुर इत्यादि की मगलकामना हेतू अपने इष्ट देवी-देवताओं का स्मरण करते हुए नोली स्थित माहसू देवता को सम्बोधित करते हुए क्षण-भंगुर इस मिथ्या संसार से विदा लेती है। सती के सत्य-वचन जरा सुनिये तो :

सुखी चेंई देवरा शौरा – शाशु,
खोला दे राजी मुखी जुगा दे आशु
अणू देखे कौरा बोठा माहसू खे ढाला,
अन-पाणे खोटिया की छी न चाला।

मास्ती कुजी अपने पतिदेव के संग सती हो जाती है। लोक-कवि हिन्दू धर्म में इस आस्था की पुष्टि करते हुए कि मनुष्य-जीवन में सत्कर्म करने पर मोक्ष प्राप्ति होती है, इस मनतव्य से जन-साधारण को सजग करते हुए कहते हैं कि शुभ कर्म के फलस्वरुप यमराज ने अम्बी को पांचों पाण्डवों का गौरव-युक्त पद– भण्डारी नियुक्त किया तथा सती कुजी को अपने भोजनालय की मुखिया।

उपरोक्त पंक्तियों में सती गीत का संक्षिप्त सार दिया गया है। मास्ती के सम्पूर्ण भावो को लोक कवि ने निम्न पंक्तियों में प्रकट किया है :

दाय गाय बिदा करा औंबी रे आशा
केबी औंबे आणा खाडू बाकरा रे राशा।

राशे खी ओंबीया चौंगो न छाडू
आस्ती मेरा राशेखी बाड़ा रा खाड़ू।

राश आणें ओंबीया राजा रा रोड़ू
दाईया-भाईया गड़ा रा बेचीओ पोरु।

गैणा रींगा गीरजा नेवला शींणे
काला बारा अम्बीया पशड़े दीणे।

शेलो पोशों ठण्कों नांदा शियाओ
चूले री पठोंईयां मेरे सौड़ा छिआओ।

साथी छेंग्रा सौंड़ा लागा ले रुन्दे
ग्रोरे कमाएं खांई किहाणे हून्दे ।

एकी नोटी ग्रादमीयाँ मांदला जाग्रो
दैग्रो पूछो कूला रा बोला ला काग्रों ।

खोली ग्रागू बोठेगा धुणी कुडी लाए
बाड़ कशमोली रे सात्रे छिग्रांऐ ।

ग्रोत्रा देग्रा कुला रा जा पगड़े होए
बोला ग्रांबी माथा खे कसरे खोए ।

ग्रोत्रा बनायड़ु डाले रे ग्रोसा
मेरा नाहीं ग्रौंबी माथा खें दाए न दोशा ।

ग्रोत्रा देग्रा कुला रा लागा ला रुंदा
शीरा ग्रोंबी माथा रा लाए न मूंदा ।

दीणें देग्रा कुला रा उतरा चोड़े
भाटा करा माग्रोला ग्रोरखा लोड़े ।

देग्रा बोलू कुला रा ग्रोंबी न खाए
चाम्बा री देऊ फड़ीग्रा तेरो मान्दरा छिग्राए ।

देवा करा कुला रो उपरा बोला
काल्का करनाल देऊ पितलु ढोला ।

काल्का करनाल तेरा सींदी न खाऊं
जोंग्रा री खोली ग्रांतरे हां किणे लाऊ ।

काल्का करनाला तेरे मुं बी न चेई
जोंग्रा री खोलीग्रा ग्रोंतरे लाँईदे नाहीं ।

जंवा ग्रौंबे ग्राशा तेरो मान्दरा हांडे
सुना रा देऊ छतरा रुपा रे डांडे ।

ग्रोत्रा बनाईका लागा ला रुन्दा
भाता रा चावला ग्रौंबे न हून्दा ।

तोंगा बोंठे कुजीग्रा लेखेग्रा लेवा
किणों बोलो ग्रोतरेग्रा कुला रा देवा ।

देवा दीणा कुला रा उतरा चोड़े
भाट करा माग्रोला ग्रोरखा लोड़े ।

एकी नोटी ग्रादमीग्रा भाटा खें जाग्रो
भाटा तेस गढ़ी रा ग्रोरु बढ़ाग्रो ।

भाटा गाढ़े गढ़ी रा चूड़के सांचा
मरना-जीवणा रा श्राखरा बांचा ।

श्रागा श्राश्रो पहला श्राखरा शौड़ो
घिशा तेरी देवले दे मास्ते मौड़ो ।

तेती शुणों कुजीया खाड़ीया रौए
भाटा शाकंरा रे पतरे वौए ।

मेरा तुहा बोलणा रो मानीया न णेरो
कुटा रो पीशा रो करा सकेरो ।

बोठे शरेणेश्रां भला रा जाए
मेरा हाथा श्रोंबीया पथड़ु खाए ।

पथड़ु नहीं खांईदा शाकरा गोड़ा
काठे लागे बेदणा श्रोठड़ु जुड़ा ।

खांइदो न पथड़ु पींदो न पाणे
जो पापे बोठो मेरो जीवा रो दाणे ।

छौए बीशा ठाणे श्रा बोठा ला फेरा
माथेश्रा श्रांबिया शए भी तेरा ।

चश श्राए कुंदले गाची रा फेरा
शौए कीया हौश्रा ले मरी ले मेरा ।

बूरा दैंश्रा माश्रथा श्रशथी हरी
पेटा री भाए बेदणेश्रा चौंगा नी मरी ।

बुरा दैंया माकथा लोंगो सुपारी
पेटा री भाए बेदणेरी करी ले कारी ।

कुजी रा भाए रामधना इहिदा रोहे
घैली दे तेरी मितरा लागा ले शौए ।

बोठा शरैंणा लाडला ले चाडू
सूला कणा बेदणा तों एखली ना छाडू ।

तेरी हाँ मूशा रा भूजू न भेश्रो
मोड़ तेरा मंची जलणे न वेश्रा ।

बाण्ठणीया कुजीश्रा सूंबीया खा तेरा
श्रोरु दे घरमा मरीया मेरा ।

कवला दीणा घरमा कोंला हाथा
जा हौले तेतढ़ी जल ले साथा ।

मोड़ लाऊ मैंची खी ऐंजा रा तौंरा
जलणा न मरणा खी कसी रा डौरा।

जलणा जा मरना खी बानणी छाती
आगे मांझे जिऊंदा लागा ली ताती।

तैंवा परैंणा बाबू खण्डीया रे धीआ
धागटू जेओ चौड़ू लो अपणो जीऊ।

बाण्ठणीयाँ कुजीया एजी न हे रा
ठाणा न कोटे वौआ मेरा मण्डी रा बेड़ा।

एबी नैरू कुर्वीया तैंवा न मानूं
ठाणा कोटी चौंगा लागा पईया चराना।

बाण्ठणीया कुजीया शरैंणीआ बोठे
राजा चौंगा पोटा मेरे घरा रे मंडोठे।

गड़ा बादे नगरा दे हुए नजाणा
कुजी रा मोठखा दे डूबे पाराणा।

भोलो बरींदडू पौड़ो नजाणा
बोलदा–बताओंदा डूबा पराणा।

गड़ा री आई छेवड़ी बोठा ली फेरा
रुन्दे कै न कुजिया सूंची खा तेरा।

गड़ा री छेवड़ीया मेरीआ माओ
रुन्इदा न झूरीदा शवाकूओ शाओ।

गड़ा री छेवड़ी री भींगीआ मौरु
आफी लाऊं नाहीणा खें पाणी रा चरु।

राणा – बीआँणीया निकल्ें तोंगा
बेरा टूए नैहीणारे काल्के सोंगा।

एकी नोठी आदमीया बाड़ी खे जाओ
जेंगला बाढ़ी आंगतू ओरु बाढ़ाओ।

जेगला बाढ़ी आंगतू आ खोलीआ ऊजा
कसखी चांणी पौंलगे कौसखी जूबा।

टेके बढ़ेटुआ वासे रे जोटे
पूछ इऊं मास्ती सौचे खे खोटे।

सते खोटे जलेआ का पूछणे तेरा
जुग चाणा तींहणो चीता लो मेरा।

जुग का दाड़ीया शकीवणो तेरा
तेरा लिखू जुगा मांझा पाण्डू रा डेरा।

हाँ होंदा दाड़ीया राजा रा कीया
राम लिखू लखमणा पशा दे सीया।

तेरा लाऊ जूमा दे कौरु भांडा
जुग चाणू तींहणा छुटुग्रा हांडा।

बाढ़ी बढ़ैटकू रो मौरा लो पेड़ो
तीणां चाणों जुगटु बांगो परेड़ो।

एक न दैग्रा दाड़ीया पेड़ा री गाली
ग्रागली लागा जुगा दे बाँगी–पराड़ी।

एकी नोठी ग्रादमीग्रा ढाकी खीजाग्रो
ढाकी ढकेटकू ग्रोरु बढ़ाग्रो।
टेके ढकेटकुग्रा ढोला रे जोटे
पूछ इंया मास्ती सचे खे खोटे।

सचे-खोटे जल्ग्रा पूछणे खा तेरा
बाजे भीयाग्रा लो जलणो मेरा।

ढाकी बाड़ी सोई री दोड़जी लागी
खला भाजा ग्रखदा भरुई बागी।

जुगा गाही निकले गे चड़के राणे
ठाणे रे जोड़ा ठौड़ा बाली रो पाणे।

सुखी थेंई देवरा शौरा–शाशु
खोला दे राजी मुखी जुगा दे ग्राशु।

ग्रणू देखे कौरा बांठा मासू खे ढाला
ग्रन–पाणे खोटीया कीछी न चाला।

ढाल हुए देवठी खी ठौड़ी खी सुए
गढ़ा तौमू छोटी खे राम राम हुए।

हाथा कूजे करी कूंगू-कथरी रे थालें
जुगा गीशे डेगे जुहणो वालें।

खड़े जा शौरेग्रा, ग्रोंबी रा बापा
कीछा-कीछा लाई थारा कूंगू रा छापा।

एक छापा ला इंया ठारे री खोली
दूजा छापा ला धीया ग्रापणी डोली।

चीजा छापा लाईयां ठड़ी खे पौरा
चौउथा छापा लाणा ओंबी रा घरा।

जुगा गीश डैया ले करा ले सूए
एती मतलोगा मेरे लिखदे हुए।

नीओं मेरो जुगटु कौंमू री छांई
देखो मेरा माईछी आशा खे नाहीं।

आशा तेरा माईची चूटा ली घड़ी
दारु आणा बूंगचा केवले री घड़ी।

भारू पूछा रामधना जुगा रा ओला
टाटो-णैरो बौहणेआ मुईखा बोला।

दु:ख न किछी चाहीं तो सुखा रे जलू
गाची भौलाड़ू रे ऊजल् करु।

भारू नीहां रामधना हाथा खपाए
चाला भौलाड़ा खी दुआ मेरे गाए।

गावी तेरा बाशटू रे आशे खा मूंए
भाटली रौई बेसरी ओंबी रे सूए।

नीहों मेरो जुगटू कलोटा री गारे
डाठे देखू घूसणों माईचा भौलाड़ा।

एक ढाल हौए चन्दा सूरजा ताओं
दूजे ढाल हुए मेरा माईचा जाओं।

नागा री लाए ढोल् दे कुजीया लाता
हौले मेरी लाईकी रे जला ले साथा।

जुण तुहा शौरा पड़डा जाओ
जू तुहा देवरा उपल् लाओ।

ओरु गाढ़ो कोठी खा कुंगु रे ताल्
दाए-भाए गढ़ा रा जाला बींडाल्।

सोला बोलू साणीआ मेरीआ माओं
आगे रा लागा लोंका शाँगली पाओ।

सीला हेरे सावणी आ शाँगल् छाड़े
धुंआँ रे हेरे लोंका द कुजीया गाड़े।

हाड़ा रा रुड़कु पड़ा माटी रा भागा
सास डैआ सरगा गास भोगा ले आगा।

पाजा ला पाझड़ुआ ओम्बे बढारे
सोल़ लाए सावणीया कुजे कधारे।

हाक दीणें भूरेआ झड़ा री भल़ी
खुंदा री मीरा री ठाणे खे जल़ी।

अमरे सेना साहबा कथरी रा बीणा
ठाणा कोटी दौणा रा हुक्मा दीणा।

मों दौए मास्ते ठाणा रा भौड़ा
जौणो तौखे हुक्मा तू तौंहणें कौरा।

टाणा-कोटें दुई जौल़ें चीजे भौलाड़ा
सेइजी जाल़ो लूपीया भाए बदैंरा।

घोड़ा भरुओ पलगीया देवी रो हाटा
एतो हुबी ठाणा रे न जाणदा बाटा।

हूबी बाल़ी बीरगो उटों कियाल़ो
तैंआ नियों रतणा मावी रो ठाणो।

खुंद का खुंद ए बेगी मीयाणौ
साता दुसा रतनू रा दौउओ न ठाणो।

निदेशालय उद्यान विभाग,
हिमाचल प्रदेश,
शिमला – १७१००२।

★ ● ★

ऐतिहासिक लोक कथा–सतवन्ती

–प्रेम कुमार शर्मा

असली नाम तो कोई नहीं जानता, सब सतवन्ती ही कहा करते हैं। सम्भवतः इस लिए कि सतवन्ती (पतिव्रता) होने के कारण उस के अनेक विचित्र चमत्कारों से लोग अत्यन्त प्रभावित थे। फिर उसके चमत्कार केवल कपोल कल्पित या कल्पना क्षेत्र की बात न होकर आज तक जीते जागते प्रमाणों से अनुप्राणित हैं। कभी दादी अम्मा से सुनता था — अमुक स्त्री धान कूटती हुई मूसल को ऊपर उठाये हुए किसी के पुकारने पर वहीं छोड़ कर चली जाती और मूसल तब तक वहीं ऊपर उठा हुआ टिका रहता जब तक वह स्वयं पहुंच कर उसे थाम नहीं लेती। इस प्रकार सत के बल की बातों पर तब विश्वास होता था या नहीं किन्तु भारतीय इतिहास के कुछ पृष्ठों की जानकरी होने पर अविश्वास वाला कोई स्थान भी नहीं रह जाता क्योंकि भारत का न केवल अतीत अपितु वर्तमान भी सैंकड़ों उदाहरण प्रस्तुत करता है कि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में भारतीय नारी की विचित्र और महत्वपूर्ण भूमिका हुआ करती है। ऐसी नारियां भारत के किसी एक भू भाग में ही उत्पन्न होती हों सो भी नहीं। ये विभूतियां तो यत्र, तत्र, सर्वत्र अवतरित प्रमाणित हैं।

ऐसी नारियों में हिमाचल के जिला चम्बा में साहो क्षेत्र में वर्तमान ग्राम 'पंडाह' की सतवन्ती नार भी हुई है। उसकी निश्चित समय सीमा तो स्मृति पटल से उतर चुकी है, तदापि वर्तमान प्रमाण और लोक धारणा के अनुसार इतना तो कहा ही जा सकता है कि घटना राणा युग की है। चम्बा में पृथक-पृथक स्थानों पर कबजा किए हुए राणा लोग शासक बने हुए थे। इसलिए एक दूसरे का बहुत बार टकराव भी हो जाया करता था। इसी कारण उनके निवास स्थान दुर्गम एवं ऊंचे-ऊंचे टीलों पर हुआ करते, जिससे एक दूसरे की वहां तक पहुंच कठिन होती और रोकी भी जा सकती थी। इन्हीं कारणों से राणाओं की घटनाएं ऊंचे-ऊंचे टीलों दुर्गम भागों और पृथक-पृथक स्थानों से अथी पाई जाती हैं।

ग्राम पंडाह चम्बा नगर के उत्तर पूर्व में लगभग ११ मील की दूरी पर स्थित है। इस छोटे से गांव के खेतों, इधर-उधर के समीपस्थ वन भागों में तब और अब भी एक अपनी ही प्रकार का वृक्ष अधिकता में पाया जाता है। इसे स्थानीय लोग 'ऐल्हण' कहा करते हैं। इसमें एक ऐसा दुर्गण है कि जो पशु इसकी पत्तियां विशेषकर कोंपलों को खा लेता है उस पर कुछ ऐसा विषैला प्रभाव होता है कि वह खाना पीना छोड़े मुंह से लारे गिराता हुआ तड़फ-तड़फ कर मर जाता है। उसे बचाने की सम्भावना तब हो सकती है जब समय पर दही, छाछ, खटाई

पिलाई जा सके अथवा मन्त्र द्वारा प्रभाव उतारने वाला मिल पाए। वमन, विरेचन क्रिया के साधन भी लाभकारी होते पाए जाते हैं। गांव निवासी प्रति क्षण चिन्तित बने रहते। अपने पशुधन की चिन्ता उनके लिए कम कठिन समस्या नहीं थी। बिना पशु पाले निर्वाह जो कठिन था। खेतों के लिए खाद, जोताई के लिए बैल, ठण्ड से बचने के लिए भेड़ों से ऊन प्राप्ति, दूध, दहीं, घी सब कुछ पशुओं पर ही तो निर्भर था।

ऐल्हण वृक्ष का होना ही अकेली समस्या नहीं थी, गांव में पानी का नितान्त अभाव भी समस्या बना हुआ था। दूर नाले से पानी लाना पड़ता, जिससे जीवन का अधिक समय पानी की व्यवस्था में ही व्यतीत हो जाया करता। न केवल अपने लिए ही किन्तु घर पर रहने वाले पशुओं के लिए भी पानी लाना होता था। ये दोनों बातें पंडाह निवासियों के लिए कांटा बनी हुई थी। इस पर भी इन ग्रामवासियों का व्यवसाय कुम्भकारी होना पानी की आवश्यकता को बढ़ावा देता है। कुम्भकारी के लिए इस स्थान की मिट्टी बहुत उपयुक्त जो थी। ना ही जन्म भूमि का मोह छोड़ा जाता। जैसे तैसे जीवन चल रहा था।

पंडाह और साहोग्राम के बीच साल नाम का नाला बहता चला आ रहा है। गांव साहो जहां आज चन्द्रशेखर का प्रसिद्ध मन्दिर वर्तमान है वहां गांव के किनारे एक महात्मा (सिद्ध) रहा करते जो नित्य प्रति साल नाले पर ब्रह्म मुहुर्त में उठकर नहाने जाते थे। एक दिन जब वे अपने नहाने के स्थान पर पहुंचे तो उन्हें आभास हुआ कि उनसे पहले ही कोई नहा कर गया है। कौन होगा जो मुझ से भी पहले नहाने आया करता है? अच्छा कल देखूंगा। यह सोचकर अपने निवास स्थान पर पहुंच कर इसी विषय पर सोचता रहा। अगले दिन बहुत पहले नाले के एक बड़े पत्थर के पीछे छिप कर आने वाले की प्रतीक्षा करने लगा। थोड़ी देर बाद उसने देखा—बड़े ही सुन्दर, भूरी जटा वाले तीन बालक आकर नाले में नहाने लग पड़े। जैसे ही नहा कर नाले से बाहर निकले लपक कर महात्मा ने तीनों को पकड़ने का प्रयत्न किया परन्तु एक ही बालक पकड़ में आ सका, दो चम्बा की ओर भाग निकले। जिज्ञासु महात्मा ने जब उस बालक से परिचय पूछा तब वह अपना नाम चन्द्रशेखर बताकर वहीं प्रस्तर शिवलिंग बन गया।

चकित हुआ महात्मा उसे ले जाने की इच्छा से उठाने लगा पर शिवलिंग उठाए न उठ सका। महात्मा ने विवश हो कर दस बीस व्यक्ति और बुलाकर उठवाने का यत्न किया परन्तु सब व्यर्थ। शिवलिंग उठ न सका बात और भी अद्भुत लगने लगी। महात्मा तरह-तरह के विचारों में डूबा हुआ लौट आया। रात को उसे स्वप्न हुआ—"तुम मुझे ले जाना चाहते हो तो ग्राम पंडाह की कुम्हारी सतवन्ती से मुझे उठवाओ दूसरा कोई मुझे उठा नहीं सकता। और जहां मैं पुनः भारी हो जाऊंगा वहीं मेरी स्थापना कर देना।" आज जहां चन्द्रशेखर (शिव) का मन्दिर साहो में विद्यमान है, यही वह स्थान है जहां शिवलिंग दुबारा भारी हो गया था। जहां बालक शिवलिंग बन गया था, वहीं प्रतिवर्ष दुर्गाष्टमी के दिन श्रद्धालु नाले में नहा कर श्रद्धानुसार भेंट चढ़ाते, धूप ध्यान करते। आजकल जहां नाला बह रहा है उसके साथ ही चम्बा की ओर से पुल पार करके कैलाश जैसी छोटी सी शेखरी बनी है। इसी पर स्थापित शिवालिंगादि को धूप दीप किया जाता है। तदनन्तर चन्द्रशेखर के मन्दिर में लोग पूजन करते हैं।

ग्राम पंडाह से सतवन्ती को बुलाने भेजा गया व्यक्ति जब उसके घर पहुंचा तब सतवन्ती रोटी पका रही थी, पास ही बालक को सुलाया हुआ था। सन्देश वाहक के कहते ही चूल्हे में पड़ी रोटी और सोये हुए बालक को छोड़ कर सतवन्ती उस के साथ चल पड़ी। कुछ लोग चूल्हे पर धरे हुए घी की भी बात कहते हैं। सतवन्ती ने जो शिवलिंग दस–बीस व्यक्तियों से नहीं उठाया जा रहा था। झट उठाकर पालकी में रख दिया। जब उस व्यक्ति के साथ घर पहुंची तब वह मनुष्य यह देखकर चकित हो गया कि जलते हुए चूल्हे में रोटी जलना तो दूर वैसी की वैसी अधकच्ची पड़ी थी तथा बालक सोया हुआ ही था।

इस प्रकार की बातों से सतवन्ती के प्रति लोगों की श्रद्धा और अधिक बढ़ती गई। ठीक भी है सत का बल कुछ भी असम्भव नहीं छोड़ता। सावित्री ने मरे हुए पति को जीवित करके दिखा दिया था। इधर पालकी उठाए जय जयकार करते लोग नाले से साहो की ओर बढ़ रहे थे। चढ़ाई चढ़ कर जब लोग साहो के समतल जैसे भाग पर पहुंचे तो सब सोच रहे थे न जाने वह कौन सा स्थान होगा जहां पालकी पुनः भारी हो जाएगी और वहां हम चन्द्रशेखर की स्थापना कर सकेंगे। कितना अच्छा हो इसी समतल पर स्थापना की जा सके। लगभग पांच सौ गज आगे पहुंचने पर पालकी इतनी भारी हो गई कि एक पग आगे चलना कठिन हो गया। वहीं पालकी रखकर चन्द्रशेखर की स्थापना कर दी गई। नगाड़े, ढोल, नृसिंहे, करनाल, तुरही, शहनाई, बैंश आदि स्थानीय वाद्य बजने लगे। जय-जयकार से वातावरण गूंज उठा। लोगों के बीच में से एक व्यक्ति कांपता, किलकता सबके सामने आ कर जोर से लोगों को सम्बोधित करता है। गाजे बाजे बन्द करके लोग सुनने लगे। वह व्यक्ति फिर कांपने लगता है। कांपता हुआ बोला— बजाओ बाजे। लोग तरह-तरह के नारों से शिवजी की जय जयकार करने लगे, बाजे बजने लगे। पुनः पहले जैसा ही वातावरण, कांपने वाला व्यक्ति फिर बोला—लोग चुप होकर सुनते हैं। कांपती आवाज से वह व्यक्ति बोला–मैं; मैं; ब्; ब्; बल्लु, स्; स्; सतवन्ती जो इठी सद्दा (मैं वल्लू सतवन्ती जो इठी सद्दा, मैंने कहा सतवन्ती को यहां बुलाओ) एक व्यक्ति को पंडाह की ओर भगाया गया। पंडाह यहां से चार मील से कम नहीं है। समय तो लगना ही था। अतः जब तक सतवन्ती नहीं पहुंची शिवजी भगवान के भजन कीर्तन स्तुति होती रही। जब सतवन्ती वहां पहुंची पुनः बाजे बजाए जाने लगे। जय जयकार गूंज उठी। कांपने वाला व्यक्ति फिर कांप उठा। हाथ जोड़ सतवन्ती उसके सामने खड़ी हो गई। कांपने वाले ने कहा—सतवन्ती! हउं त्रुठया तू वर मंग (मैं प्रसन्न हुआ हूं। वर मांगो) सतवन्ती बड़ी नम्रता से बोली—आप प्रसन्न हैं तो महाराज! हमारी दो कठनाइयों को दूर करने की कृपा करें। पहली यह कि ऐल्हण का विषैला प्रभाव हमारे पशु धन का विनाश कर डालता है उससे हमारा सम्पूर्ण स्थान सुरक्षित हो जाए। पानी का अभाव हमारी दूसरी समस्या है।

चेले ने (कांपने वाला व्यक्ति चेला कहलाता है। चम्बा में लोक साधारण की धारणा है कि व्यक्ति विशेष में देव प्रवेश हो जाने पर वह कांपने लगता है और फिर जो कुछ कहता है वह देव प्रेरणा कहलवाती है।) कहा—"जा ऐल्हण तुन्धे निर्विष भुची गाल्हा कने पाणी री कै गल हा, सो भी कुड़ी पूणेरा।" (जाओ ऐल्हण तुम्हारे यहां विषैला नहीं रहेगा साथ ही

पानी की क्या बात है वह भी निकल पड़ेगा) सतवन्ती ने लाख-लाख धन्यवाद किया और माथा टेककर लौट चली गई। वह अपने घर की ओर जा रही थी, लोग सतवन्ती की तरह-तरह के शब्दों से प्रशंसा करने लगे। सामूहिक श्रेय और हित की कामना करने वाली नारी प्रशंसा की ही तो पात्र थी।

आज पंडाह वाले सतवन्ती द्वारा पाए प्रसाद का लाभ तो उठा रहे हैं किन्तु खेद है उसका असली नाम भूल चुके हैं। सतवन्ती आज नहीं है पर पंडाह क्षेत्र में ऐल्हण आज भी निर्विष बना हुआ है। जितने चाहें पशु एल्हण खा लेते हैं। परन्तु उसका जहरीला प्रभाव बिल्कुल नहीं होता। पनीहार एक नहीं चार स्थानों पर विद्यमान हैं। ऐसी नारी पर प्रदेश को ही नहीं सम्पूर्ण देश को गर्व तो होना ही चाहिए साथ-साथ ऐसे चरित्र से शिक्षा भी प्राप्त करनी होगी।

धन्य है उसका जीना, जो पर हित में जीवन जीये,
व्यर्थ है उसका जीना, जो निज हित में जीवन में जीये।

मुहल्ला-चौंतड़ा, ज़िला चम्बा
(हिमाचल प्रदेश)

अनोखे मोण मेले का परम्परागत इतिहास तथा महत्व

रुप कुमार शर्मा

हिमाचल प्रदेश मेलों और उत्सवों का प्रदेश है। ये मेले यहां के जनजीवन के अभिन्न अंग हैं। ये मेले इन्हें नया उत्साह और मनोरंजन प्रदान करते हैं। भटतु के अनुसार लगने वाले ये मेले यहां के लोगों के व्यस्त तथा कठिन जीवन में उत्साह और उल्लास भर देते हैं। इन मेलों में सभी जातियां, नर नारी व बच्चे उत्साह से भाग लेते हैं।

परन्तु जिस मेले का वर्णन मैं कर रहा हूं यह जिला सिरमौर के आन्तरिक भाग, जिला शिमला के जुब्बल, चौपाल तथा जौनसार के कुछ भागों तक सीमित है। यह मेला अन्य मेलों के विपरीत खस (राजपूतों) के नौजवानों का मेला है। जो मोण के नाम से प्रसिद्ध है। जब कभी नौजवान अपने बालपन को छोड़ कर नौजवानी में कदम रखता है तो उसे कहा जाता है "होई गिया मोणो जुगा छेवड़ा" अर्थात अब यह बांका नवयुवक मोण के मेले योग्य हो गया है। यहां पर प्राचीन काल से कई जनजातियां बसी हैं जिनका आपस में वैर-भाव रहा है। वे अक्सर अपनी शक्ति का प्रदर्शन तथा दूसरे की शक्ति का अनुमान लगाने के लिए उत्सुक रहते थे। अतः यह मेला शक्ति आंकने का मुख्य माप दण्ड रहा है क्योंकि इसमें बच्चे, बूढ़े और स्त्रियां शामिल नहीं होती थीं। इस मेले के मनाने की कोई निर्धारित तिथि नहीं होती किन्तु परम्परा के अनुसार खत[1] के मुखिया को अपने जीवन काल या पिता की मृत्यु के बाद इसे मानना अवश्य समझा जाता था इसका कारण यह रहा होगा कि जब नया मुखिया बनता था तो लोग उसके नेतृत्व तथा वीरता को परखना चाहते थे। अतः इसमें अपने काबिले जो कई गांवों में फैला होता था को एकत्रित करने और उसका कुशल नेतृत्व सिद्ध करना होता था। यह एक प्रकार का युद्ध अभ्यास भी था। इसमें लोग कम से कम वस्त्र और हाथों में तलवारें, लाठियां और बन्दूकें लेकर जाते थे और इसमें मरना मारना बुरा नहीं समझा जाता था। अगर किसी पक्ष का कोई व्यक्ति मर जाए तो कचहरी में मुकदमा नहीं ले जाया जाता था बल्कि खून का बदला खून से लिया जाता था चाहे कितना कठिन संघर्ष और लम्बा समय क्यों न लगे।

---

1. खत : कई भेजों (ग्राम समूह) का समूह।

यहां के मुखिया तथा बयोवृद्ध जनों के साक्षात्कार तथा पुस्तकों के आंशिक विवरण के आधार पर इसका उदय हुआ। कहा जाता है कि द्वापर के अन्त में हानोल (बावर जौनसार) नामक स्थान पर एक प्रसिद्ध तीर्थ बन गया। इसे पाण्डवों के भाई भीम द्वारा निर्मित माना जाता है। इस मन्दिर में कुल ३२ भारी भरकम पत्थरों का प्रयोग किया गया और उन्हीं पत्थरों से इसके ३२ कोण बने हैं। इस मन्दिर के ऊपर एक भारी वजन की शिला रखी गई है जिसे वज्र कहा जाता है, यह शिला कई सौ मन की होगी। यह कार्य किसी बलवान व्यक्ति का हो सकता है। वैसे भी पाण्डव का होना यहां के लाक्षामण्डल और अन्य चिन्हों से प्रतीत होता है। द्वापर के अन्त तक सभी राक्षसों को कृष्ण ने समाप्त कर दिया था। कुछ असुर शेष रहे थे जिन्होने कृष्ण से अभयदान मांगा था और जिन्होंने नीच कार्यों को न करने का वचन दिया था। भगवान कृष्ण ने उत्तरी भारत के पर्वतीय क्षेत्र में बस जाने की अनुमति प्रदान की। इन्हीं असुरों में से कालियर नाम का नर भक्षी दानव मेन्द्रथ नामक स्थान पर रहता था। कलियुग आने पर इन्हें मारने वाला कोई वीर न बचा अतः वे अपने पुराने नीच कर्म करने लगे। यह दानव प्रतिदिन नरबलि लेता था। एक दिन बलि के लिए मेन्द्रथ के पण्डित (खरदाई) खादरी पटोड़ा के निवासी की बारी आई। यह पण्डित भगवान भक्त था तथा इसकी पत्नी पतिव्रता तथा ईश्वर की अनन्य भक्त थी। उसने अपने पति की रक्षा के हेतु इष्ट देवता की स्तुति की। भय से ब्राह्मण की नींद न आई किन्तु अर्ध निन्द्रा में उसे एक स्वप्न हुआ कि एक साधुवेशधारी पुरुष उसके समीप आया और सिर पर हाथ रखकर उसे दिलासा देने लगा। "घबराओ मत, तुम्हारी रक्षा होगी किन्तु इसके लिए तुम्हें काश्मीर के किंगल स्थान पर जाना होगा। तुम्हें वहां ले जाने के लिए पुष्पक विमान आएगा।" स्वप्न क्या था जब पंडित जागा तो देखता है कि उसके आंगन में एक पुष्पक विमान वास्तव में उतर रहा है। उसमें से दो आदमी निकले जो आदर सहित पंडित को उस विमान में बिठाते हैं और विमान द्वारा उसे काश्मीर के किंगल स्थान पर मन्दिर के सामने ला छोड़ते हैं। वहां पंडित मन्दिर के अन्दर जाकर देखता है कोई महापुरुष उसकी प्रतीक्षा कर रहा है वह महा शक्ति (विष्णु) उसे आशीर्वाद देती है और उसे काश्मीर वेद की पुस्तक[1] तथा कलस देकर कहा—"तुम कल शुक्रवार जब कोट तथा हनोल (स्थान का नाम) पर सूर्य की प्रथम किरण पड़े तो खेत में हल चलाना, भूमि से उत्पन्न वीर तुम्हारी रक्षा करेंगे। यह कहकर पण्डित को उसी रात्रि को ही पुष्पक विमान द्वारा वापस घर छोड़ दिया गया। पंडित बड़ी बेचैनी से सुबह की प्रतीक्षा करने लगा। पंडित प्रातः से ही तैयार बैठा था। ज्यों ही सूर्य की प्रथम किरण कोट व हलोन पर पड़ी वह[2] बैल लेकर अपने खेत को जोतने लगा। कुछ समय बाद उसका हल अचानक एक स्थान

1. काश्मीर वेद : मेद्रथ के ब्राह्मण अपने वेद तथा साचा (पंडित विद्या का ग्रन्थ) का लिपि तथा उग्रव काश्मीर वेद से भागते हैं।

2. जनश्रुति के अनुसार इससे पूर्व ब्राह्मण हल नहीं चलाते थे अपनी वेद विद्या से घर का खर्च चलाते थे किन्तु इसके बाद हल चलाना बुरा नहीं समझा जाता था और परिणामस्वरूप ब्राह्मण कृषक भी बन गए।

में अटक कर रूक गया। पंडित ने उस स्थान को खोदा जहां से चार वीर प्रकट हुए। ये चारों पराक्रमी पुरुष महासू देवता के चार रूप थे।[1] इन्होंने उस राक्षस को मार गिराया। इन वीरों ने उसके पुत्र पोखु को मार दिया तथा पोखु की पत्नी शुपिन को भी। पोखु को प्रेतदेव के नाम से याद किया जाता है और किसी प्रेतात्मा से मुक्त करने के लिए उसे बलि दी जाती है। एक अन्य राक्षसी रूपिन तोस (तमस) नदी में परिवर्तित हुई। यह राक्षसी नदी कहलाती है। यह नदी देखने में बड़ी डरावनी है और इसका जल उद्भव स्थान से लेकर इसके यमुना नदी में गिरने तक न पीने के काम आता है और न ही भूमि सिंचाई के प्रयोग में। शक जाति का एक और दानव किरमिर के नाम से प्रसिद्ध था। यह सर्पस्वी दानव पैर वाला था जो लोगों को बड़ा तंग करता था। महासू देवता ने बावरी के पुत्र बाबर (जिसके नाम से शायद बावर प्रदेश पड़ा) से मिलकर ऋषि पंचमी के दिन युद्ध में इसे भी मार दिया और अटाहल के स्थान पर पानी में डुबा दिया, इस विशालकाय राक्षक से नदी का पानी रुक गया। इस राक्षक के मरने की खबर सुनकर चारों ओर से लोग बुलाये गए इसलिए नदी पर लगने वाला मेला मौण (मीन खड्ड का बिगड़ा हुआ रुप) के नाम से प्रसिद्ध हुआ तथा इस खुशी के अवसर पर महासु देवता की याद में ऋषि पंचमी का मेला लगता है जिसे स्थानीय भाषा में 'पाजवी' कहा जाता है।

किरमिर दानव तो मारा गया किन्तु उसका भतीजा आसुर बच गया और भाग कर शिरगुल देवता के प्रदेश में घुस गया। शिरगुल देवता उस समय दिल्ली गया हुआ था। अतः उसकी अनुपस्थिति का लाभ उठा कर शिरगुल के भक्त चुरू के परिवार को तंग करने लगा। जब शिरगुल को इसका पता चला तो वह पोण घोड़ा (उड़ने वाला घोड़ा) से चूड़धार को रवाना हुआ। आकर क्या देखता है कि चुड़ू का परिवार एक बड़ी शिला पर है उसे चारो ओर से आसुर ने घेर रखा है। शिरगुल ने चुरू के परिवार को गिरने से बचाने के लिए सर्प (ब्रज) बना दिया। यह आज भी ऊंची शिला पर मानवाकार के पत्थर शिला से चिपके विद्यमान हैं। शिरगुल हाथ में तलवार लेकर दैत्य को मारने दौड़े किन्तु दैत्य भय से भागा। शिरगुल देवता ने उसका पीछा किया और वर्तमान जुवली गांव के नीचे ओल के स्थान पर दैत्य पर खण्डे (तलवार) का वार किया किन्तु दैत्य वार से बच निकला। वह वार पत्थर की शिला पर पड़ा जहां उसके निशान आज भी स्पष्ट मौजूद हैं। दानव सैंज खड्ड की तरफ भागा। शिरगुल उसका पीछा कर रहे थे अतः जनश्रुति के अनुसार दानव ने सैंज खड्ड से पहाड़ को बींध कर निकल जाने का प्रयत्न किया। जहां से उसने पहाड़ बींधा था वहां से अब भी सैंज से गुमराह तक सुरंग है और उसमें से पानी निकलता है। दानव सैंज से गुमराह स्थान पर निकल कर भंगाल से तौंस नदी में जाना चाहता था किन्तु शिरगुल ने लगातार बिजलियां गिरा कर उसे घायल कर दिया। बिजलियां गिरने से आज भी वहां विशाल शिला दोफाड़ है। दानव आगे बढ़ने के प्रयत्न में एक स्थान

---

1. महासू देवता प्रायः कृष्ण का अवतार माना जाता है क्योंकि हनोल मन्दिर जहां उसका निवास स्थान है पांडवों द्वारा निर्मित माना जाता है और पांडव कृष्ण भक्त थे किन्तु कई विद्वान महासू को महाशिव शब्द से उत्पति मानते हैं।

जिसे सागढ़ी (संकरी) कहा जाता है अपने आगे वाले भाग से निकल गया किन्तु पिछला भाग उसमें फंस गया। शिरगुल ने उस पर लगातार बिजलियां गिराई। इसी समय महासू देवता भी वहां आया किन्तु शिरगुल ने यह समझकर कि शायद वह भी आसुर की सहायता के लिए आया है, बिजली गिरा कर उसकी एक आंख फोड़ दी। अतः महासु देवता काना बन गया। यह दैत्य दो पत्थरों के बीच फंस गया और उसके खून से नदी का पानी विषैला हो गया। उसे निकालना इक्के-दुक्के का काम नहीं था। अतः महासू देवता ने यहां चारों ओर के लोगों को मौण (बुलाया) दिया ताकि इस फंसे हुए दानव को खींचकर निकाल कर नदी में डाला जा सके किन्तु साथ ही तिबर (तेजबल) की बूटी को भी साथ लाकर नदी में डालने को कहा क्योंकि इससे विषैला जल शुद्ध हो जाता है। उसे राक्षस के दर्शनार्थ वह उसे बाहर निकालने के लिए मिनस (जो शब्द मीन अर्थात् मच्छली से बना है) के स्थान पर चारों ओर जौनसार खत (परगना) भरम, सतौता किरण, (जुब्बल) कोटी बौंछ, किणु पनोग, हलाह, भंकाड़ों भटनौल के चार लादी के लोग महासू के कहने पर अपने नाट्य यन्त्रों के साथ नाचते गाते एकत्रित हुए। तत्पश्चात यह मेला मौण के नाम से मिनस में मनाया जाने लगा। जो भगाल और तौस का संगम स्थान है।

मौन आदि समय में काशमीर, किन्नौर और अन्य स्थानों पर भी मनाया जाता है। कई मौन शब्द की उत्पति मोन जाति से मानते हैं जो आदि जाति थी।

समयोपरान्त यह मेला खड्ड और नदियों के किनारे अन्य स्थानों पर भी शुरु हुआ। देवता की यादगार के अतिरिक्त इसे मनाने का मुख्य उद्देश्य मच्छलियों को मारना और शक्ति प्रदर्शन बन गया है। यह मेला सेंज खड्ड (जुब्बल), शावड़ी खड्ड (चौपाल), लखवाड़ (जौनसार), तथा चड्डा खड्ड मिनस, डाकरा, कोकवाड़ी, सिसोई (सिरमौर) के स्थानों पर मनाया जाने लगा।

इस मेले की मुख्य विशेषता यह है कि यह खड्ड या नदी के ऐसे किनारे पर मनाया जाता है जहां भाग लेने वाले की सीमाएं मिलती हों। इसका उद्देश्य मच्छली मारना और शक्ति प्रदर्शन तथा बदला लेना है। इसको मनाने के लिए एक खत (परगना) के खश खेल (राजपूत कबीला) के लोग दूसरे प्रतिद्वन्दी या जिससे बदला (अपमान या खून का) लेना हो (शेकरा गाड़ना) चुनौती देते हैं कि हमारा तुम्हारे साथ कुछ लेन देन है अतः उक्त मेले में आकर हिसाब–किताब करना है। पक्ष तिवंर (तेजवल) के दोनों को सुखा कर पिसा लेते हैं और मेले के दिन कई मन दानों को ले जाकर पत्थरों के बीच दुर्गम स्थानों में नदी पर छिपा लेते हैं दूसरे पक्ष का उद्देश्य इस तिवर को प्राप्त कर (तिंवर ढालना) उसे नदी में बिखेरना होता है। उस दिन सभी

चालड़ा : इसके देवता का ध्वज (टाली) लेकर सारा साल गांव से दूसरे गांव में चलते रहत हैं। केवल छटे महीने जब पानड़ी महासू देवता का उत्सव होता है तब एक रात हनोल में ठहरता है।

बौठा : इस देवता की मूर्ति बैंठी अवस्था में है वे स्थिर है और वर्ज है।

सोमसी

परगनों के नौजवान सीड़े व घी (स्थानीय खाने का नाम) खाकर नाचते गाते बड़े जोश से गंतव्य स्थान की ओर बढ़ते है। गानों में बड़ी अश्लील गालियों का प्रयोग होता है। बच्चे स्त्रियां प्रायः इसमें भाग नहीं लेती क्योंकि इसमें गन्दी गालियों का प्रयोग होता है और झगड़े का अक्सर खतरा रहता है। अगर कोई शामिल हो तो बहुत दूर से इसे देखते हैं।

खड्ड पर एक पक्ष अपने गिने चुने नौजवानों की सहायता से तिंवर की रक्षा करता है। उसकी रक्षा पंक्ति चट्टान की तरह दूसरे पक्ष को आगे घुसने और तिंवर को प्राप्त करने के प्रत्यन को विफल करना चाहते हैं। दूसरा पक्ष अपनी मौण जन समूह को तीव्र गति से साथ लेकर रक्षा पक्ष के ऊपर टूट पड़ते हैं। धक्के और भगदड़ व कई बार लड़ाई भी हो जाती है। जब तक तिंवर को नदी में न बिखेरा जाए यह मेला सम्पन्न नहीं माना जाता। अगर दूसरा पक्ष तिंवर को प्राप्त करने में सफल होता तो विजय उस की होती है। अन्यथा पहले पक्ष की मानी जाती है। यह युद्धाभ्यास और शक्ति के प्रदर्शन में प्रत्येक युवक अपना भाग अदा करता है। तिंवर प्राप्त करने पर इसे पानी में डाल दिया जाता है, जिससे मच्छलियां बेहोश हो जाती हैं। अतः मेला समाप्त होने पर लोग मच्छलियां पकड़ने में लग जाते हैं। इस प्रकार मेला सम्पन्न होता है। शाम को घर में आये मेहमानों को मच्छलियां खिलाई जाती हैं और रात को नाचने गाने का आयोजन होता है।

प्राध्यापक आवास बस्ती
एम० आई० जी० – 16
नाहन, जिला सिरमौर
हिमाचल प्रदेश।

भटियात का चमत्कारी देवता नाग विणतरु

–धर्मचन्द कौशल

नाग विणतरू का मन्दिर रायपुर या चौवाड़ी से लगभग ८ या १० किलोमीटर दूर है। इस स्थान की ऊंचाई लगभग ५००० फुट से भी अधिक की है। एक नाले में नाग देवता जी की मूर्तियां एक चबूतरे नुमा पत्थर पर स्थापित की हुई हैं, किंवदन्ती है कि नाग देवता मन्दिर में रहना पसंद नहीं करते आग्रह करने पर भी मन्दिर में रहने की स्वीकृति 'चेला' द्वारा प्राप्त न हो सकी। ठाकुर सरदारसिंह नरयाल ने यहां पर एक छोटी सी धर्मशाला बनवाई थी परन्तु वह भी गिर गई यह देवता की इच्छा से हुआ ऐसा कहा जाता है। यहां प्राचीन काल से हर वर्ष ज्येष्ठ शुकला पंचमी को रात्री के समय मेला लगता है, जिसमें आस-पास के हजारों श्रद्धालु 'नाग भक्त' भेंट लेकर इतनी दूर, विकट वन मार्ग से चल कर आते हैं और अपनी श्रद्धा के पुष्प चढ़ाते हैं। कभी-कभी रात को वर्षा होने पर इतनी सर्दी हो जाती है कि बैठना मुश्किल हो जाता है। कोई भी आदमी छाता नहीं ले सकता ऐसी देवता की आज्ञा है। अगर लोग छाते आदि का प्रयोग करेंगे तो वर्षा उतनी अधिक बढ़ती जाएगी और यदि नाग देवता की जय जयकार करेंगे तो वर्षा कुछ ही पलों में थम जाती है, ऐसा कहा जाता है।

यहां से चार किलोमीटर दूर एक बहुत बड़ा राजपूतों का गांव 'प्रयुंगल' नाम से है जहां नाग देवता का स्थान है, इसी गांव में नाग देवता का पुजारी और 'चेला' रहते हैं। देवता का जितना भी सामान जिनमें जेवर, सोने व चांदी के नगाड़े, शहनाई आदि इन्हीं के पास रहता है। मेले वाले दिन नगारे, बांसरी, काहलों (शहनाई की तरह का एक वाद्य यन्त्र) रणसींगा की वाद्य ध्वनियों में जिन्हें बजाने वाले 'बेंसी' (एक खास किस्म की जाति जिन्हें चम्बा के राजा द्वारा यह काम सौंपा गया था) होते हैं, यह वाद्य यन्त्र बजाते हैं, और पुजारी लोग नाग देवता का सामान उठाकर हजारों श्रद्धालुओं के साथ नाग देवता की जय-जयकार करते हुए, नाचते हुए और गाते हुए जलूस की शक्ल में नाग देवता के 'थड़े' स्थान की ओर चलते हैं। सन्ध्या के समय नाग देवता को फूल मालाओं, बहुमूल्य वस्त्रों तथा सोने व चांदी के छत्रों के साथ सजाते हैं। तमाम वाद्य यन्त्र जो कि बहुमूल्य धातुओं से बने हैं, शंख और घण्टों की गूंज के साथ, जहां कोई आसपास बस्ती नहीं है एक अनोखा वातावरण पैदा करते हैं। चारों ओर देवदार के वृक्षों व पहाड़ियों के बीच जय जयकार की ध्वनि से प्राचीन संस्कृति की एक झलक उत्पन्न हो जाती है। और हर श्रद्धालु के मन में शांति सी आ जाती है तथा भक्ति की लहर हरेक इन्सान के अन्दर पैदा हो जाती है।

यहां का शांत बातावरण, शीतल जल तथा प्राकृतिक सौंदर्य को देखकर ऐसा महसूस होता है कि मानों किसी तपोवन में प्रविष्ट हुए हों। यहां पर प्राचीन काल से ही बलि (बकरे-आदि की) श्रद्धालुओं द्वारा दी जाती है। कहते हैं कि अगर नागर देवता के आगे प्रार्थना की जाए और उससे सच्चे मन से जो मांगा जाए मिल जाता है। कहने का तात्पर्य इतना है कि हर श्रद्धालु की इच्छा पूरी हो जाती है और जिसने जो मनौती की हो उसे वहां मेले वाले दिन देनी पड़ती है। प्रथा के अनुसार लोग बकरे आदि की ही 'सुखणा' मनौती मानते हैं। और कभी-कभी इतने बकरे कटते हैं कि दिल कांप उठता है। बकरे के खून का 'लोखा' प्रशाद बांटा जाता है, लेकिन यह भी व्यवस्था है कि जो मांस आदि का सेवन नहीं करते उन्हें हलवा आदि प्रसाद में मिलता है।

अर्द्धरात्री के समय यहां 'घियाना' (आग का अखाड़ा) जलाया जाता है, जिसमें नाग का 'चेला' सज्ज-धज्ज कर हाथ में त्रिशूल लिए काफी समय तक नाचता रहता है। लेकिन 'चेला' के वस्त्र या शरीर को आग से किसी प्रकार का नुकसान नहीं होता। दर्शक गण इस चमत्कार को देखकर स्तम्भित से रह जाते हैं। उसी समय 'चेला' द्वारा देव कोप से पीड़ित लोगों के प्रश्नों के उत्तर तथा निवार्ण आदि की विधि भी बताई जाती है। लेकिन यह अचम्भे की बात है हर आदमी को उसका नाम बुलाकर आवाज देता है। भले ही वह आदमी हिमाचल प्रदेश या देश के किसी भी कोने का हो। इसके पश्चात् प्रातः नाग देवता की आरती आदि हो जाने के बाद मेला समाप्त हो जाता है। लोग सुबह अपने-अपने घरों को चल पड़ते हैं।

नाग देवता का सामान पुजारियों द्वारा सुरक्षित अज्ञात स्थान पर निगरानी के पश्चात् कड़ी निगरानी में रखा जाता है। नाग विणतरू का बड़ा भाई 'नाग मंदौर' है। जिसका मन्दिर चुवाड़ी के पास कुठेड़ नामक स्थान में है वहां भी श्राद्धों के प्रथम आठ दिनों में मेला लगता है और नाग विणतरू भी अपने पुजारियों, चेलों आदि के साथ अपने ज्येष्ठ भाई से मिलने आता है। इस नाग देवता में भी बड़ी चमत्कारी शक्ति है, जिसका इतिहास भी बहुत लम्बा है।

नाग विणतरू जहां भटियात के लोगों का परमपूज्य है, वहां राजा चम्बा के राज-परिवार का कुल देवता माना गया है। अंग्रेजों व मुसलमानों के शासन काल में चम्बा के राजाओं को कई बार कठिन से कठिन परीक्षाओं में देव-भूमि के राजा होने के कारण गुजरना पड़ा और सफल हुए राजाओं ने अपनी मनौती के अनुसार नाग देवता को हजारों रुपयों का सामान व जमीन दी और नाग देवता के आगे नतमस्तक होकर उसके महत्व ही बनाए रखने का प्रयास किया। कहा जाता है कि चम्बा के राजा को एक बार दिल्ली में किसी सरकारी जलसे के लिए बुलाया गया। लोगों में चर्चा थी कि राजा देव उपासक है तथा इनमें बहुत से चमत्कारी गुण हैं। दिल्ली में एक बहुत बड़ी खाई खुदवाई गई और राजा को कहा गया कि वह घोड़े पर सवार होकर इस खाई को पार करें। राजा ने नाग देवता का ध्यान करके घोड़ी को आगे बढ़ाया और खाई पार कर गए लेकिन

घोड़ी मर गई। एक बार दिल्ली में मुस्लिम सुलतान ने राजा को दिल्ली खाने पर बुलाया। लेकिन परीक्षा हेतु खाना परोसा गया लेकिन राजा का थाल राजा से काफी दूर रखा गया तथा तीन मुंह वाला पानी का जग भोजन के पास रख दिया और कहा गया कि अगर तुम्हारे नाग देवता मे इतनी ही शक्ति है तो भोजन का थाल स्वतः आपके पास पहुंचना चाहिए तथा इस तीन मुंह वाले जग से पानी पीते हुए पानी ऊपर नहीं गिरना चाहिए। इस तरह की शर्त राजा के समक्ष रखी गई। राजा ने उसे सहर्ष स्वीकार किया और नाग देवता को मन ही मन याद किया। कुछ ही क्षणों में थाल के नीचे से नाग देवता प्रकट हो गए, लेकिन दर्शक डर गए। राजा ने कहा, डरो मत यह मेरा कुल देवता है यह किसी को कुछ नहीं कहेगा। नाग ने थाली को अपने मुंह से सरका कर राजा के आगे कर दिया। और पानी के जग को इस तरह अपनी पूँछ से लपेटा और उसे भी खींच कर राजा के आगे ला दिया। तथा फिर अपना आकार थोड़ा छोटा करने जग के दो मुंह इस तरह बन्द कर दिये कि राजा के पानी पीते हुए एक बूंद भी पानी की नहीं गिरी। इस तरह राजकुल को इन नाग देवताओं ने कठिन से कठिन परीक्षाओं में भी सफल किया और मुस्लिम शहनशाहों को भी स्तम्भित कर दिया।

एक बार की बात है कि राजा नाग देवता के मन्दिर में मनौती देने गए पूजा आदि से निवृत होकर जब खाना खाने बैठे तो ज्येष्ठ मास की इतनी धूप थी कि बैठना कठिन हो रहा था अतः राजा के नौकर (अर्दली) ने राजा के ऊपर छाता किया तो राजा ने कहा कि जिनके चरणों में मैं आया आकर वही छाया करें तो खाना खाऊंगा नहीं तो नहीं खाऊंगा। जब नाग देवता ने उनकी जिद्द देखी और धूप में बैठे हुए राजा के प्रण को देखा तो नाग देवता से नहीं रहा गया और उन्होंने (नाग देवता ने) इतनी बड़ी फन फैलाई कि सारा स्थान छाया से ढक गया। और राजा ने छाया में खाना खाया।

नाग विणतरु के दो भाई और भी हैं। एक नाग खजी और एक नाग छतराल के नाम से मशहूर हैं। तथा एक बहन है जो नागणी माता के नाम से प्रसिद्ध है। जिसका स्थान नूरपुर से कोई आठ किलोमीटर धर्मशाला रोड़ पर है। इस तरह हमारे देवी-देवता जहां परम पूज्य हैं वहां उन्होंने हमें कठिन से कठिन समस्याओं के समाधानों में भी राय दी है। मैं समझता हूं कि इनकी (देवी देवताओं की) महत्ता को जितना ज्यादा बढ़ाया जाए उतना कम है।

गांव व डाकखाना रायपुर
तहसील चुवाड़ी, जिला चम्बा
(हिमाचल प्रदेश)

जेन आसटन (Jane Asten) के नारी पात्र

–डा० आत्माराम

"जेन आसटन की जीवन-अनुभूतियां (इनके उपन्यासों से भरी पड़ी हैं) बीसवीं शताब्दी तक अचित्रित रहीं। इनका चित्रण होना अभी भी शेष है।" ऐसा बी०सी० साम्रोथम ने लिखा है।

अठाहरवीं शताब्दी से अन्त तक नारी उपन्यासकारों का उनकी रचनाओं में नारी तथा नारी-गुणों के प्रकटीकरण की ओर ही झुकाव रहा। १७ वर्ष की आयु में ऐवलीना ने 'वूमनैलीनैस' के साथ साहित्यिक-संसार में प्रवेश किया। यद्यपि वह पुरुष-संसार घूम रही थी परन्तु उसकी रचनाओं में उसका झुकाव नायिका के अनुभव के प्रकटीकरण की दिशा में रहा। कुमारी फैनी बर्नी तथा मेरीया ऐजवर्थ दोनों के ही संरक्षक पुरुष थे और उन्होंने अपने नारीत्व को वाहरी प्रभाव से मुक्त रखा।

शोध–समीक्षा–सार

पिछले अंक से हमने अनुसन्धित्सुओं के शोध-प्रबन्ध के सार संक्षेप का सिलसिला प्रारम्भ किया था जिसका पाठकवर्ग में व्यापक स्वागत हुआ है। इस शृंखला की दूसरी कड़ी यही प्रस्तुत है।

–सम्पादक

किसी हद तक जेनआसटन तथा कुमारी फैनी बर्नी की तुलना आवश्यक तथा न्याय-संगत लगती है। कुमारी बर्नी ने जेनआसटन की रचनाओं के लिए कुछ ताणा-बाणा भी दिया है। दोनों ही की कहानियां पारिवारिक तथा विवाहिक जीवन से सम्बन्धित हैं। परन्तु उनके अनुभव भिन्नता लिए हुए थे। कुमारी वर्नी डा० जोहनसन की संरक्षता में थी। इसलिए उसका मार्ग काफी सुलभ था। वह पहले ही उपन्यास के प्रकाशन पर प्रसिद्धि प्राप्त कर गई। जेन-आसटन ऐसी भाग्यशालिनी

न थी। उसकी प्रारम्भिक रचनाएं तथा उपन्यास मनोरंजन का साधन ही समझे गए। केवल विक्टोरिया समय के बहुत थोड़े अलौकिक समालोचकों ने उसे सराहा। उसके प्रशंसक धीरे-२ बढ़े। केवल उसके मैमोयर (१८७०) के छपने पर ही उसकी प्रतिभा की पुटिष्ट हो पाई।

दोनों इन नारी उपन्यासकारों के दृष्टिकोण भी भिन्न थे कुमारी बर्नी शहरों में रही इसलिए उसे शहरी जीवन पसन्द था। उसने आचारण पुस्तकों तथा रिचर्डसन की रचनाओं में अपनाए गए ढ़ग का अनुकरण किया है।

इसके विपरीत जेन आसटन अपने ग्रामीण जीवन से आनन्दित होती थी। उसकी रचनाओं के सभी सुपात्र गांवों से सम्बन्धित हैं। हल्की तथा हेय भूमिकाएं उसने शहरी पात्रों को ही दी हैं। उसका दृष्टिकोण प्रगतिशील तथा वास्तविक है। उस पर रिचर्डसन या आचरण पुस्तकों का जो भी बहुत थोड़ा प्रभाव पड़ा है उसे उसने अपने नारीत्व में आत्मसात कर लिया है। साहित्यिक गतिविधियो से निर्लेप रहने पर भी रिचर्डसन, फील्डिग, स्वीफट तथा समोलेट जैसे साहित्यकारों के कुछ संकेत ग्रहण किए हैं। शैली तथा लेखन-विधि अपनाने के लिए इसके सम्मुख नारी उपन्यासकार ही रहे। यह दूसरी बात है कि साहित्यिक उपलब्धि में यह सब को पछाड़ गई।

कालरारीवा का लेखन रोमांस पूर्ण था। कुमारी मेरीया ऐजवर्थ के पात्रों पर आयर्लैंड का दबाव झलकता है। उसका साहित्य यथार्थ में प्रबोधक है। कुमारी फैनी बर्नी बहुफलप्रद तथा अनुकरणशील हो गई है परन्तु जेनआसटक ने ग्रामीण नारी पात्रों का बड़ा ही सजीव वर्णन किया है। उसके साहित्य में आदर्शोन्मुखी यथार्थवाद साफ झलकता है।

अठाहरवीं शताब्दी के अन्त तक भी नारी के प्रति विचारधारा रूढ़ थी। यह व्यवहारिक परम्परा एक ओर भावनात्मक तथा निराशा जन्य थी तो दूसरी ओर सहानुभूति और दया की भावना से ओत-प्रोत थी। तब प्रायः स्त्री को पुरुष से हेय समझा जाता था। यह धारणा जीवन के सभी क्षेत्रों में विवाह, सामाजिक स्तर, पारिवारिक जीवन आदि में प्रकट होती थी। नारी के प्रति अन्याय का प्रतिबिम्ब इसके सभी उपन्यासों में मिलता है। पुरुग का चरित्र नारी के मुकाबले में उत्कृष्ट चित्रित हुआ है। उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में जीवन तथा समाज की घिसी-पिटी धारणा को, विशेष कर रुसो तथा गोडविन के शिष्यों ने झंझोड़ कर रख दिया। लेखकों ने कामुक साहित्य की डट कर भर्त्सना की मेरी बुलस्टोन क्राफट ने नारी के प्रति हीनता का विरोध करके स्त्री पुरुष के समान अधिकार है, का नारा दिया। रूढ़िवादियों को यह बात बहुत बुरी लगी। हैनामोर, मेरीया एजवर्थ तथा ऐलिजावैथ हैमीलिटन ने अपनी रचनाओं में उसका कड़ा विरोध किया।

इंगलैंड के उत्तरी भाग में नारी-जागरण आन्दोलन पहले पहुंच गया था परन्तु दक्षिणी भाग में जहां जेनआसटन रहा करती थीं इसका प्रभाव बहुत धीरे-धीरे पहुंचा। तभी तो इनकी रचनाओं में नारी-जागरण आन्दोलन का वर्णन बहुत थोड़ा मिलता है। वह मेरी बुलस्टोन क्राफट या बारवारालेहस्मित या कुमारी बिले की नाईं नारी के प्रति हीन भावना से ग्रस्त न थी। उसने सदा ही प्रवुद्ध नायकों का चित्रण किया है। जेन का क्यों? कैसे? क्या? में पूर्ण विश्वास था। उसके

अनुसार नारी अपने अधिकारों के प्रति सजग तथा सक्षम है। वह नारी के नारीत्व में ही उसकी शक्ति का आभास देती है।

जेन आसटन की रचनाओं में नारी का मूल्यांकन परिवार में नारी की भूमिका को ध्यान में रखकर किया है। उसकी दृष्टि में पारिवारिक सम्बन्ध बड़े महत्व के हैं। उनकी अवहेलना करने वाली नारी को वह क्षमा नहीं करती है। इसकी नायका में भारतीय नारी का चरित्र झलकता है वह मां की ममता, बहन का स्नेह तथा पत्नी का प्रणय साथ लेकर चली है। वह प्रिया है, आकर्षक है, तथा सुघड़ है। उसका हृदय कोमल, निर्मल तथा पवित्र है। कर्कशता में भी वह अपनी गरिमा को बनाए रखती है। नारीत्वहीन नारी, नारी की श्रेणी में नहीं आती।

जेनआसटन स्कूल की तथाकथित शिक्षा से दूर ही रहना चाहती है। यह शिक्षा नारी को उसके नारीत्व से पीछे धकेलती है। एक आध को छोड़ कर इसकी सभी नायिकाएं इस शिक्षा से मुक्त रही हैं। मानसिक सजगता के कारण वे संवेदनशील है जिसकी मि० बेनेट ने भी पुष्टि की है।

'ऐमा' (Emma) में नायक सजग है परन्तु नायिका का जीवन त्रुटिपूर्ण दिखाया गया है यह प्रवृति ऐलिजवैथ बैनेट तथा ऐन इलीयट में भी है। पूर्णता तो मानव की क्षमता से बाहर है। जेन आसटन अपनी परिधि इस संसार तक ही सीमित रखती है। इसकी नायिकाओं की भाषा बड़ी स्पष्ट तथा अर्थपूर्ण रहती है। घबराहट में भी अर्थ की सहजता ओझिल नहीं होती। इनमें आदर्शोन्मुखी चेतन सजगता है जो अविरल आत्मसात होती रहती है तथा सुशीलता अपने प्रभामण्डल के साथ उनमें शोभायमान है।

दया, सहनशीलता तथा कोमलता के साथ-साथ जेन के उपन्यासों में पात्रों का चरित्र-चित्रण यथार्थ तथा मनोहर चित्रित हुआ है। इसी में ही उसकी निर्बलता तथा सबलता है। इसके नारी-पात्र प्रभावशाली है। पुरुष पात्र भी उनके ही होकर रहते हैं।

उसने स्त्रियों को तंग करने वाले पुरुष-पात्रों को हेय की दृष्टि से देखा है। वे अपनी मुर्खताओं में भी नारियों जैसी गतिविधियां अपनाते हैं। घरेलू जीवन में स्त्रियों का काम करते हुए ऐसे परिहास का कारण बने हैं जो भुलाए भी नहीं भूलते।

नारी-पुरुष मिलकर ही घरेलू जीवन को मधुर तथा सन्तुलित बनाते हैं। नारी का नारीत्व ही तो है जो इसे स्थिर प्रेम तथा प्रशंसा प्रदान करता है। जेन आसटन की नायकाएं सदा ही पाठक को अपनी ओर आकर्षित करती हैं, क्योंकि वे नारीत्व की प्रतिमूर्ति हैं।

राजकीय महाविद्यालय
हमीरपुर,
हिमाचल प्रदेश

शोध प्रबन्ध का सार

कामायनी का आनन्दवाद

कामायनी का आनन्दवाद, उसका मनोवैज्ञानिक आधार तथा तुलनात्मक अनुशीलन।
(पंजाब विश्वविद्यालय की पी०एच०डी० के लिए १९६६ में स्वीकृत शोध-प्रबन्ध)

—डा० नीलमणि उपाध्याय

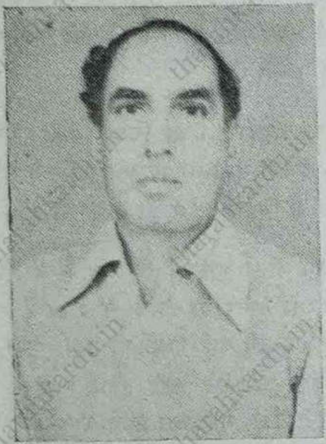

आनन्द का अनुसंन्धान मानव चिरकाल से करता आ रहा है। आनन्द का लक्ष्य-बेध करसाधक महाचेतना में अवस्थित होना चाहता है। आनन्द की यह खोज प्रत्येक व्यक्ति अपने-अपने ढंग से कर रहा है। वह सामान्य व्यक्ति हो या कलाकार हो, सभी का परमप्रिय पुरुषार्थ यही है। काव्य की रस साधना तत्वतः आनन्द की साधना है। काव्य-कला आनन्द से ही समुद्भूत, स्थित तथा पुष्ट होती है। उपनिषद् का मन्त्रद्रष्टा ऋषि ब्रह्म को रसमय कहता है तथा उद्घोषणा करता है कि इस रस को प्राप्त कर ही व्यक्ति आनन्दित होता है 'रसो वै सः, रसो ह्यवायं लब्ध्वानन्दी भवति' प्रत्यभिज्ञा-दर्श न की तो यही विमल दृष्टि है कि रसानुभूति आनन्द की अनुभूति है, विमर्श या विश्वात्मा की जिन रूप में विश्रान्ति है।

दर्शन और काव्य :

अब कई प्रश्न सामने आते है कि यदि आनन्द ही काव्य का लक्ष्य है और दर्शन का भी साध्य है तो उनकी प्राप्ति प्रक्रिया में कहां अन्तर हो जाता है ? उनकी आनन्दानुभूति क्या समान कोटि की होती है ? और फिर यदि उद्देश्य एक ही है तो दार्शनिक और कवि क्या एक ही पथ के पथिक नहीं है ? दोनों के साधना-पथ में तात्विक अन्तर कहां आ जाता है ? अन्योन्य सम्बन्ध रहते हुए भी दर्शन और काव्य दोनों की साधना में कहां तक साधक अथवा बाधक सिद्ध होता है ? इन प्रश्नों का समाधान पाने पर ही हम कामायनी की दार्शनिक पृष्ठ भूमि व प्रत्यभिज्ञा दर्शन के कामायनी पर प्रभाव को सम्यक् रूप से हृदयंगम कर सकते हैं।

प्रथम प्रश्न यह है कि यदि आनन्द ही काव्य का लक्ष्य है और दर्शन का भी साध्य है तो उनकी प्राप्ति प्रक्रिया में कहां अन्तर हो जाता है का उत्तर टी०एस० राघवन देते हैं कि रसास्वादन में विभाव सहायक सिद्ध होते हैं तो अध्यात्म व दर्शन में उपासना व चिन्तन तथा रसमुभव सहृदय द्वारा तथा आत्मानन्द मुमुक्षु द्वारा संप्राप्त किया जाता है। अंडरहिल का भी कथन है कि कलाकार का माध्यम उसके शब्द स्वर और उनकी लयादि होती है और इन्हीं के द्वारा वह उस परमसत्य, परम आनन्द की झलक मात्र दे सकता है। दार्शनिक अपने चिन्तन-मनन द्वारा यही कार्य सम्पन्न करता है।

जहां तक दूसरे प्रश्न की बात है कि क्या दोनों का आनन्दानुभव समान होता है, इसका उत्तर स्पष्ट है कि इस दृष्टि से रसानुभूति आत्मानुभूति के ही समकक्ष है। भारतीय साहित्यशास्त्र के आचार्य तथा सौंन्दर्य शास्त्री पुनः-पुनः इनके रस साम्य की उद्घोषणा करते हैं। साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ भी काव्यानन्द को चिन्मय आत्मा का उद्रेक, वेद्यान्तरस्पर्शशून्य, ब्रह्मानन्दसहोदर, अलौकिकादि कह कर इन दोनों की समकक्षता सिद्ध करते हैं। दर्शन के पंचकोष की साधना के सोपान तथा साहित्य-साधना के समान लक्ष्य को इंगित करते हुए रामास्वामी शास्त्री लिखते हैं कि, पंचकोषों के सिद्धांत के सम्बन्ध में हमें स्मरण रखना चाहिए कि जैसे जैसे हम ऊंचे उठते जाते हैं तथा विज्ञानमय कोष और आनन्दमय कोष को संप्राप्त करते हैं, हमारे जीवन के स्थूल कोष हमारी पूर्ण आत्माभिव्यक्ति में बाधक नहीं रहते हैं। स्पष्ट नव्य दृष्टि कल्पना तथा अन्तःप्रज्ञा की सहायता से हम वस्तुओं के निहित सत्य को अनुभव कर पाते हैं तथा सृष्टि के सौन्दर्य का अवलोकन करते हैं और परम आनन्द के रूप में इससे आच्छादित होते हैं और ललित कलाओं में तथा उनके द्वारा इसका सृजन करना चाहते हैं।

अगला प्रश्न यह है कि यदि उद्देश्य एक ही है तो दार्शनिक और कवि क्या एक ही पथ के पथिक नहीं हैं, इसके उत्तर में कहा जा सकता है कि दोनों का पथ एक ही है और वह है आत्मा का प्रकाशन। दार्शनिक और कवि एक ही पथ के पथिक होने पर भी दोनों की परम अवस्था तक पहुंचने की गति तथा वाहन भिन्न-भिन्न हैं। यही हमारा अगला प्रश्न है कि दोनों के साधना पथ में तात्विक अन्तर कहां है। दर्शन का साध्य ज्ञान के माध्यम द्वारा संप्राप्त होना है जबकि काव्य का माध्यम भावना या राग है।

डा० नगेन्द्र सामान्य दर्शन और काव्य में प्रतिपादित दर्शन के भेद तथा दर्शन के काव्य में साधक और बाधक रूप को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि काव्य का दर्शन, शास्त्र के दर्शन से भिन्न होता है। शास्त्र के दर्शन में तत्व तर्कगम्य और विचार सिद्ध होते हैं किन्तु काव्य में उन्हें अनुभूति का विषय बनाया जाता है। शास्त्र के दर्शन में हेतु-निगमन-दृष्टान्त की एक दृढ़ शृंखला विद्यमान रहती है, जिसके आधार पर प्रतिपादित दर्शन का व्यवस्थित विधान सहज ही प्रस्तुत किया जा सकता है, किन्तु काव्य में इसके विपरीत अनुभव और कल्पना का प्राचुर्य होने के कारण इस प्रकार की तार्किक व्याख्या सम्भव नहीं है—इसलिए किसी नियमित शास्त्रीय विधान की आशा भी नहीं की जा सकती।

दर्शन प्रभावित काव्य का स्वरूप क्या होता है इसी को व्यक्त करते हुए हर्बर्ट रीड लिखते हैं कि, दार्शनिक काव्य तर्क-प्रभावित होता है। इसकी भावना वह आनन्द है जो तर्क की विजय से उत्पन्न होता है और केवल भावुकताजन्य आनन्द नहीं होता है। अन्ततः वह उन विचारों का प्रकथन है जो कवि अपने अनुभव से प्राप्त करता है। साहित्य शब्दावली में कहा जाए तो यह व्यापक तत्वों का काव्य होता है। प्रसाद की कामायनी में दर्शन और काव्य का यही वांछित संगम हुआ है। उन्होंने अपने जीवन द्वारा दर्शन के दूर क्षितिज को छूना चाहा है और दर्शन की निःसर्ग, ज्ञानलोकित तथा सर्वव्यापक एवं सर्वोत्तीर्ण दृष्टि से जीवन-व्यक्ति और समाज दोनों के

जीवन के श्रेय और प्रेय के मूलभूत प्रश्नों, आधुनिक जीवन की कटु यथार्थताओं, उसके दुःख-सुख तथा वैषम्य के समाधान का सत्साहस किया है और यही कारण है कि कामायनी दर्शन की गरिमा, विद्वता तथा नव्य दृष्टि से सम्पन्न होकर युग-युगकी नित्य नूतन तथा रमणीय कृति बन गई है।

प्रत्यभिज्ञा-दर्शन :

काश्मीर शैवमत की चरम परिणति प्रत्यभिज्ञा दर्शन है। यह उसके विचार और दर्शन को पराकाष्ठा है तथा इसी में यहां के सिद्ध और योगी अपनी साधना की परिपूर्णता को प्राप्त कर सके हैं। यह दर्शन सैंकड़ों शताब्दी पुराना होते हुए भी चिर नवीन है, इसमें जीवन की वह उष्मा है तथा प्रेरणा देने की अप्रतिम शक्ति है। यह अब भी भटके हुओं और भ्रान्त विचारकों और साधकों का मार्गदर्शन कर सकता है तथा उन्हें जीवन के मूलोद्देश्य की पहचान करा सकता है यह दर्शन हमारे भीतर जो महान है, दिव्य है, शिव है, उसका उद्‌घाटन और अभिज्ञान हमें कराता है। प्रत्याभिज्ञा दर्शन का अपना विशाल साहित्य है, केवल आकार ही विशाल नहीं बल्कि विषय प्रतिपादन भी अत्यन्त सूक्ष्म, गम्भीर और अन्तर्भेदिनी दृष्टि से हुआ है।

षडत्रिंशतत्व का प्रत्यभिज्ञा-दर्शन में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है और लगता है कि यही इसका मुख्य परिचायक है। यही कारण है कि कभी-कभी कुछ लोग इन्हें पर्यायवाची समझते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि षडत्रिंशतत्व ही इस दर्शन की रूप रेखा को पूर्ण करता है तथा उसे एक अत्यन्त व्यवस्थित, स्पष्ट तथा तर्क संगत आधार देता है। यही कारण है कि प्रत्यभिज्ञा दर्शन में इसका अत्यन्त विस्तृत तथा विपुल विवेचन मिलता है। काश्मीर शैवमत में 'षडत्रिंशतत्व-सन्दोह' आदि कुछ ग्रन्थ तो बस इसी की व्याख्या तथा विश्लेषण हेतु लिखे गए हैं। जिस प्रकार सांख्य दर्शन उसके पच्चीस तत्वों से बहुधा जाना जाता है उसी प्रकार से प्रत्यभिज्ञा-दर्शन के परिचय, प्रचार और प्रसार में षडत्रिंशतत्व का मुख्य योग है।

'तत्व' शब्द सांख्य से ग्रहण किया गया है। जैसा जिसका रूप है उसको स्पष्ट तथा बोधगम्य करने वाला 'तत्व' है। जो नाना अनुभव हम प्राप्त करते हैं या प्राप्त कर सकते हैं या प्राप्त करें उन सबके मूल सिद्धांत या मूल कारण ही ये तत्व हैं। यह समस्त सृष्टि सर्वोच्च और सर्वोतम से अत्यन्त स्थूल और निम्नतम तक इन्ही 'तत्वों' से परिव्याप्त हैं। परमशिव अपनी स्वातन्त्र्य शक्ति द्वारा चिति के माध्यम से षडत्रिंशतत्व में संविभक्त हो जाता है। सम्पूर्ण विश्व के पदार्थ और परिस्थितियां इन्हीं ३६ तत्वों में अन्तर्भूत हो जाती है। यही समस्त ब्रह्माण्ड के 'सार मूल' तथा दर्शन है। इस दृष्टि से भी इनकी तत्व संख्या अत्यन्त सार्थक तथा साभिप्राय है। जो 'तत्व' का ज्ञाता है वही 'तत्वज्ञानी' है, वह योगी है, वही शिवस्वरूप है।

जैसा अभी निर्देश किया गया है तत्वों की संख्या ३६ है। इसमें २५ तत्व तो सांख्य के ज्यों त्यों लिए गए हैं तथा ११ तत्व अधिक जोड़े गए हैं तथा इस प्रकार षडत्रिंशतत्व की स्थापना तथा प्रतिष्ठा की गई है। पहले ग्याहर तत्व-शिव, शक्ति, सदाख्य, ईश्वर, सद्विद्या, माया, काल, नियति राग, विद्या, कला 'शुद्धाध्व' के अन्तर्गत गृहीत हैं। 'अशुद्धध्व' के अन्तर्गत—पुरुष, प्रकृति, बुद्धि, अहंकार, मन, पांच ज्ञानेन्द्रियां, पांच कार्मोन्द्रिया, पांच मात्राएं तथा पंचभूत की परिगणना की गई है।

प्रत्यभिज्ञा-दर्शन का कामायनी पर प्रभाव :

कामायनी के सम्पूर्ण महाकाव्य का अभिष्ट निज स्वरूप का प्रत्यभिज्ञान तथा अखण्ड आनन्द की संप्राप्ति है। मनु की जब अपने स्वरूप का प्रत्यभिज्ञान हो जाता है तभी वह द्वन्द्वातीत होकर परमानन्दावस्था में अवरचित हो जाता है। यह सब भटकन, चांचल्य तथा अशान्ति तभी तक है जब तक वह 'प्रत्यभिज्ञान' प्राप्त नहीं कर लेता है। मनु स्वयं में तभी रमण कर पाता है जब अपने स्वरूप का अभिज्ञान हो जाता है। श्रद्धा के स्वीकार तथा उसकी महत्ता के साक्षात्कार के सम्बन्ध में राजानक उत्पलाचार्य को उस उपमा का स्मरण हो आता है जहां वे सुन्दर कामिनी के समीप होने पर भी काम केलि तथा अनुरञ्जन की अनभिज्ञता द्वारा प्रत्यभिज्ञान के महत्व को स्पष्ट करते हैं।

कामायनी में श्रद्धाविहीन मनु का मार्ग वास्तव में 'मायात्व' का मार्ग है। वह 'अशुद्धाध्व' और श्रद्धा जिसे कामयानी में ज्योतिष्मती और प्रकाशस्वरुपा कहा है उससे पुनः संयुक्त होने पर मनु को अपने महाप्रकाशवपु आनन्दस्वरूप के अभिज्ञान की उपलब्धि होती है। तथा वे 'शुद्धाध्व' में प्रतिष्ठित हो जाते हैं। प्रत्याभिज्ञान के लिए स्मृति ही नहीं। 'साक्षात्कार' भी अत्यन्तावश्यक है और अपने परमशिव की मनु को जब संप्राप्ति हो जाती है। तब द्वैतभाव मिट जाता है, तथा वह विश्व उस स्वात्मप्रच्छादनक्रीड़ारसिक की लीलाभूमि लगता है। यही बात मनु कहते हैं :

सब भेद भाव भुलाकर
दुःख सुख को दृश्य बनाता
मानव कह रे ! यह मैं हूं
यह विश्व नीड़ बन जाता।

प्रत्यभिज्ञान संप्राप्ति पर विश्वास की भावना दृढ़ होती है। तथा यह विश्वात्म भाव ही हमें सब परिस्थियों में समरस रखता है।

परमशिव स्वातन्त्र्य शक्ति के बल पर चिति के माध्यम द्वारा विश्वात्म और विश्वोत्तीर्ण रूप धारण करता है। चिति को ही संविति, चैतन्य, परावाक्, पराशक्ति आदि नामों से भी अभिहित किया जाता है। 'प्रत्यभिज्ञाहृदयम्' का तो सारा दर्शन ही चिति, चित और चेतन को लेकर चलता है। कामायनी में चिति का बहुत प्रयोग किया गया है। तथा विभिन्न स्थलों पर इसके विभिन्न रुपों व कार्यों का उद्घाटन किया गया है। श्रद्धा सर्ग को लीजिए उसमें चिति किस प्रकार विश्व के चित्रपट पर परमेश्वर के पारमेश्वर्य का उन्मीलन करती है, उसी के लिए कहा है :

कर रही लीलामय आनन्द
महाचिति सजाग हुई सी व्यक्त,
विश्व का उन्मीलन अभिराम
इसी में सब होते अनुरक्त।

महाचिति या महाचेतना परमशिव से सहव्यापक है। वह भी अपने ही रुप में अवस्थित रहती है। परन्तु जगत के उन्मेष के लिए वह 'व्यक्त' अथवा स्फुट रुप से प्रकट हो रही है। तथा अपनी विश्रान्ति की अवस्था से सजग हो गई है। उसी का यह पारमेश्वर्य अथवा लीलामय आनन्द प्रस्तुत होता है। और वह विश्व का उन्मीलन अभिराम अर्थात सृष्टि का सुन्दर उन्मेष करती है। कवि कहता है कि 'इसी में सब होते अनुरक्त' अर्थात सभी इसी में विमुग्ध हो जाते हैं। चिति की इस प्रस्फुटित अवस्था में श्रद्धा का आवतरण कितना समीचीन और सुन्दर लगता है।

परमशिव अपनी स्वातन्त्र्य शक्ति द्वारा चिति के माध्यम से षड्त्रिशत् अथवा छतीस तत्वों का सविभक्तिकरण करता है। सफल विश्व के पदार्थ और परिस्थितियों का इन्हीं छतीस तत्वों में अन्तर्भाव हो जाता है। तत्वों का सृष्टि के उल्लास हेतु ही संविक्त किया जाता है अन्यथा पारमार्थिक दृष्टि से सभी प्रकाशरुप परमशिव स्वरूप है। कामायनी के रचयिता महाकवि प्रसाद भी जब 'तत्व' का वर्णन 'चिन्ता' सर्ग में जलप्लावन के सन्दर्भ में करते हैं तो तत्व के इस स्वरूप की प्रतिध्वनि स्पष्ट गूंजने लगती है :

नीचे जल था, ऊपर हिम था,
एक तरल था एक सघन,
एक तत्व की ही प्रधानता,
कहो उसे जड़ या चेतन।

प्रत्यभिज्ञा-दर्शन में विवेचित इच्छा, ज्ञान और क्रिया का कामायनी में बहुत कुछ उसी आधार पर आकलन तथा समोवश किया गया है। इच्छा ज्ञान और क्रिया के रहस्य को 'रहस्य' सर्ग के अन्तर्गत उद्घाटित किया गया है। इसमें तीनों ही शक्तियों के स्वरूप, शक्ति तथा परिसीमाओं का दिग्दर्शन कराया गया है और पृथक-पृथक रूप में ग्रहण किए जाने पर उनका व्यक्तित्व पर दुष्परिणाम भी दिखाया गया है। इसी को संकेतित करते हुए प्रसाद जी कहते हैं :

ज्ञान दूर कुछ, क्रिया भिन्न है,
इच्छा क्यों पूरी हो मन की,
एक दूसरे से न मिल सके,
यह विडम्बना है जीवन की।

यह विडम्बना तभी दूर होगी जब श्रद्धा की भिति से ये तीनों समन्वित हो सकेंगे।

कामायनी के आनन्दवाद का स्वरूप :

कामायनी का प्रतिपाद्य विषय प्रसाद जी के आनन्द सम्बन्धी सिद्धांत अथवा आनन्दवाद है। आनन्दवाद काश्मीर शैवमत अथवा प्रत्यभिज्ञादर्शन का कोई पृथक सिद्धांत अथवा वाद नहीं है। यह प्रसाद जी की अपनी दृष्टि है और वह भी 'वाद' का आग्रह लेकर नहीं बल्कि जीवन और उसकी व्यावहारिकता से सहज रूप से सम्बद्ध होकर कामायनी महाकाव्य के रूप में व्यक्त हुई है।

प्रसाद जी महान आध्यात्मिक साधक थे। भारतीय साहित्य की सतत प्रवहमान आनन्दवादी धारा उनके सामने थी। काश्मीर शैवमत के वे अनन्य उपासक थे। प्रत्यभिज्ञादर्शन का उनका गम्भीर अध्ययन था। इन्हीं सब उपकरणों से उन्होंने आनन्दवाद का निर्माण किया। यह उनकी नितान्त वैयक्तिक उपलब्धि थी, परन्तु यह सब ब्रह्माण्डव्यापिनि महाचेतना से सम्बद्ध थी। अतः यह 'वाद' इतना व्यापक, उदार तथा प्रभावशाली बन पाया।

आनन्दवाद के प्रमुख तत्व :

कामयनी के आनन्दवाद के स्वरुप को हृदयगंम करने के लिए सूक्ष्मालोकन, मनन तथा भाव-मन्थन करना होगा। इस आनन्दवाद का स्वरुप यद्यपि प्रत्यभिज्ञा–दर्शन, वेदों, उपनिषिदों आदि पर आधारित है। परन्तु फिर भी यह प्रसाद जी की व्यक्तिगत तथा विशिष्ट उपलब्धि है। गहन अध्ययन, चिन्तन तथा तीव्र जीवनसुभव से इन्होंने इसे प्राप्त और पुष्ट किया है। आनन्दवाद के स्वरुप को इनकी अपनी विशिष्ट कल्पना है। और ये इसे सर्वथा व्यवहार्य तथा प्राप्य मानते हैं। इसके स्वरुप को समझने के लिए इसके प्रमुख तत्वों का विवेचन करना समीचीन होगा। आनन्दवाद के प्रमुख तत्व ये हैं :

१. समरसता :

समरसता का तत्व प्रसाद जी के अपने जीवन में घुल मिल गया था। उनका अपना जीवन है, जैसे इस तत्व की प्रयोगशाला रही है। उनके सपुत्र श्री शंकर प्रसाद उनकी जीवन–चर्या के सम्बन्ध में लिखते हैं कि 'उनके साहित्यक जीवन और घरेलु जीवन का एक ही सत्य था–- वह था सामरस्य का सत्य। किसी नन्हें परिवार की लोक यात्रा हो अथवा आतंकग्रस्त विश्व का विपुल संघर्ष, सभी का कल्याण वे इसी सत्य की प्रतिष्ठा में मानते थे। वे आज के मनुष्य के सम्मुख उपस्थित सभी जटिलताओं को मूलस्थ विषमताओं का विपाक मानते थे। चाहे वह सामाजिक हो, राजनैतिक अथवा आर्थिक। कामायनी में विश्वजननी का मानव पुत्र के प्रति आदेश किंवा कामायनी का संदेश भी इसी सत्य का निर्घोष करता है। सब की समरसता कर प्रचार, मेरे सुत सुन मां की पुकार। वह उनकी जीवन चर्या में कैसा घुला था उन्हें निकट से जानने वालों को भली-भांति विदित था। अवश्य ही जिन्होंने संकीर्ण विच.रों अथवा अन्य किन्हीं कारणों से इस सत्य को नहीं देखना चाहा उनकी कथा और है।

कामायनी से समरसता के विविध रूपों का वर्णन किया गया है। इस समरसता के प्रमुख रूप इस प्रकार हैं :

१. व्यक्ति का सामरस्य २. समाज का सामरस्य ३. प्रकृति तथा पुरुष का सामरस्य।

२. परमाद्वयता :

अखण्ड आनन्द की भावना परमाद्वैत पर ही आधृत रह सकती है। जहां द्वैत है, वहां आनन्द कैसा? द्वैत को मिटा कर ही अच्छे आनन्द की संप्राप्ति हो सकती है। दर्शन का क्षेत्र हो या साधना का परमाद्वयता की अनुभूति दर्शन और साधना की प्रौढ़ता और चरम विकास की

परिचायक होती है। प्रसाद जी के आनन्दवाद में भी परमाद्वयता का भाव निहित है। कामायनी में भी स्थान-स्थान पर इसका प्रतिपादन है।

सागर में जैसे लहरें उठती रहती हैं और वे फिर वे सागर ही हो जाती हैं। जैसे ज्योतना जलनिधि में बुदबुद रूपी नक्षत्र अपनी उष्मा चमकाते हैं वैसे ही जब अभेदता का अभिज्ञान हो जाता है तथा तब सब मे उसी अभेद, चिर आनन्दभाव को साधक प्राप्त करता है :

वैसे अभेद सागर में
प्राणों का सृष्टि क्रम है,
सब में घुल मिलकर रसमय
रहता यह भाव चरम है।

३. स्वरूप का अभिज्ञान :

व्यापक अखण्ड आनन्द भावना के लिए यह परमावश्यक है, कि व्यक्ति को अपने स्वरूप का अभिज्ञान हो। जो अपने परमशिवत्व को प्राप्त करता है, वही परम आनन्द से अपने सम्पूर्ण व्यक्तित्व को आप्लावित कर सकता है। अपने दिव्य, महान् विभु रुप का अभिज्ञान हमें दु:ख, विषमता और द्वैत से ऊपर उठा देता है। परमशिव के ऐश्वर्य को जो जानता है तथा समस्त विश्व को लीला भूमि मानता है। वह दु:खी क्यों होगा ? मनु ने भी अब सम्पूर्ण संसार को सुन्दर साकार बनाया। देख लिया है और तभी वह आनन्दविश्रान्ति को प्राप्त कर सका है।

४. सौंदय-साधना :

कवि प्रकृति को जड़ मात्र नहीं समझता, वह तो शक्ति स्वरूप है। और चेतन पुरातन पुरुष से संयुक्त है तथा उसे पुलकित अथवा आनन्दित कर रही है :

चिर मिलित प्रकति से पुलकित
वह चेतन पुरुष पुरातन।

मनु भी सौंदर्य से ही आकर्षित होकर श्रद्धा की ओर उन्मुख होते हैं :

कौन हो तुम बसन्त के दूत
विरस पतझड़ में अति सुकुमार।
धन तिमिर में चपला की रेख
तपन में शीतल मन्द बयार।

सचमुच सौंदय-साधना 'तपन में शीतल मन्दबयार' के समान होनी चाहिए। उस साधना से ही परमशिव की विभूति के दर्शन होते हैं। तथा उसकी प्राप्ति सहज और सरल हो जाती है। प्रसाद जी की सौंन्दर्य-साधना में न तो कामूकता है, न ऐन्द्रिय भोगवृत्ति और न वासना की पंकिलता उसमें उस दिव्य सौन्दर्य की झांकी है जिससे साधक परमेश्वर के पारमेश्वर की उपासना में प्रवृत हो जाता है।

५. महाचेतना :

कामायनी महाकाव्य लगता है महाचेतना का महाकाव्य है। बार-बार चेतना का प्रयोग इसी ओर संकेत करता है। कामायनी का प्रतिपाद्य मानव को जीवन की सीमित, व्यक्तिगत तथा आत्मरत चेतना से ऊपर उठाकर व्यापक तथा सार्वजनिक विश्वचेतना की ओर अग्रसर कर, समरसता की स्थिति में अवस्थित कर महाचेतना के परम आनन्द की संप्राप्ति है।

प्रसाद जी की यह दृष्टि है कि देव-संस्कृति का विध्वंस इसलिए हुआ कि वह ऐकान्तिक आनन्द की साधना है लीन हो गया। निर्बाध उपयोग को ही वह अपने जीवन का सब कुछ समझ बैठा है। अतः आज आवश्यकता यही है कि हम देवों की इस भूल को न दोहरायें। श्रद्धा महाचेतना के जिस मार्ग पर ले जाती है वही हमारे लिए श्रेय पथ है :

चेतना का सुन्दर इतिहास
अखिल मानव भावों का सत्य;
विश्व के हृदय-पटल पर दिव्य
अक्षरों से अंकित हो नित्य।

६. श्रद्धा भावना :

श्रद्धा कामायनी महाकाव्य का मूलाधार है। कामायनी के आनन्दवाद में उसका केन्द्रिक स्थान है। सौरमण्डल के सूर्य की तरह वही अन्य ग्रह तत्वों को ज्योति और जीवन देती है। वही कामायनी के दर्शन की सूत्रधारिणी है। वही इस महाकाव्य की मूल प्रेरणा तथा जीवनदात्री शक्ति है। वह श्रद्धा-भावना की प्रतीक है। आनन्दवाद के ताने-दाने में यही श्रद्धा-भावना सर्वत्र अनुस्यूत है।

श्रद्धा-भावना से ही साधक परमार्थ के पथ पर अग्रसर होता है। श्रद्धा द्वारा ही मन की चंचलता, विक्षोभ और भटकन का निवारण होता है। मनु जब पहले-पहल श्रद्धा को पा जाते हैं तभी उनके हृदय का अवसाद और निराशा दूर होती है। वे अपने जीवन को नये सिरे से प्रारम्भ करते हैं। श्रद्धा अपनी गुणनिधि को उन्मुक्त हस्त से मनु के लिए लुटा देना चाहती है। वह मनु को कहती है :

दया, माया, ममता लो आज
मधुरिमा लो, अगाध विश्वास;
हमारा हृदय रत्न निधि स्वच्छ
तुम्हारे लिए खुला है पास।

७. व्यापक आनन्द-भावना :

सर्व कर्म, सर्व ज्ञान-विज्ञान का अभीष्ट आनन्द प्राप्ति है। मनुष्य आनन्द की खोज में तल्लीन है। जाने या अनजाने में यही उसका अभिप्रेत है। यह सृष्टि, यह लीला, यह पारमेश्वर्य उस परम अखंड आनन्द की अभिव्यक्ति है। अपरिमित, सर्वव्यापक और सर्वोत्तीर्ण आनन्दोपलब्धि

ही कामायनी का महान साध्य है। समरसता की स्थिति में अवस्थित होकर, परमाद्वयता में निष्ठित होकर, अपने स्वरूप के अभिज्ञान में प्रतिष्ठित होकर, सौंदर्य भावना से उज्जवल बनकर महाचेतना से एकाकर तथा श्रद्धा-भावना से युक्त होकर परम आनन्द की संप्राप्ति ही कामायनी का प्रतिपाद्य विषय है। तभी तो महाकाव्य कामायनी की परिणिति 'आनन्द अखन्ड बना था।' परम अभिष्ट स्थिति में होती है।

आत्मिक आनन्द ही हमारा साध्य होना चाहिए। हमें अपनी आनन्द भावना को व्यापक बनाना चाहिए। आत्मरत और आत्मकेन्द्रित आनन्द क्षणिक और दुःख में पर्यवसित होने वाला होता है, परम आनन्द तो अपने को समस्त विश्व से एकात्म करने और महाचेतना में अवस्थित रहने से ही प्राप्त हो सकता है। ऐसा आन्नद बाध्य वस्तुओं पर निर्भर नहीं करता बल्कि स्वत: सम्भूत तथा स्वनिर्भर होता है ऐसा व्यापक आनन्द ही अखण्ड और घना रह सकता है। उसी परम आनन्द की सम्प्राप्ति अब मनु ने कर ली है और महाकवि प्रसाद इसी को सोल्लास आत्मतुष्ट होकर अभिव्क्त करते हैं :

समरस थे जड़ या चेतन
सुन्दर साकार बना था,
चेतनता एक विलसती
आनन्द अखण्ड घना था।

आनन्दवाद की साहित्यिक परम्परा :

आनन्दवाद या कहना चाहिए आनन्दवादी बिचारधारा वैदिक काल से लेकर आज तक अन्त: सलिला धारा के समान प्रवाहित होती रही है। कभी उसका प्रभाव अत्यन्त तीव्र और कभी क्षीण रहा है, परन्तु वह नष्ट अथवा लुप्त कभी नहीं हुआ है। प्रसाद जी का आनन्दवाद भारतीय परम्परा का ही विकास–सोपान है।

वेदों की ही आनन्दवादी विचारधारा का विस्तार हम उपनिषदों में भी देखते हैं, वहां भी आनन्द की वही खोज तथा साधना है जो वेदों के मन्त्रदृष्टा ऋषियो को सदा प्रेरित करती रहती थी। यहां उससे भी आगे आनन्द की व्याख्या व विश्लेषण का भी प्रयास किया गया है। आनन्द की नई स्थापनाएं तथा उसे व्यवस्थित दर्शन के रूप में विकसित करने का प्रयत्न हम यहां देखते हैं।

तैतिरीय उपनिषद में अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय कोषों का बड़ा सूक्ष्म, तर्कसंगत तथा दार्शनिक निरुपण है। 'रसो वै स:' इसी रस को प्राप्त कर मनुष्य आनन्द को प्राप्त करता है, 'रसध्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति'।

उपनिषदों के पश्चात यह परम्परा तान्त्रिक साधनों में चलती रही है। वैष्णवों के माधुर्य भाव में भी हमें उसी के दर्शन होते हैं। आगमों की अवतारणा आनन्द हेतू की गई थी। यही आनन्दवादी विचारधारा रसवादी संस्कृत कवियों में देखने को मिलती है। कालिदास इस परम्परा

के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। यही आनन्दवादी साहित्यिक परम्परा भागवतादि पुराणों तदनन्तर सहजयान तथा आधुनिक काल में रहस्यवाद की धारा के रूप में लक्षित की जा सकती है।

प्रसाद–साहित्य में आनन्दवाद का विकास–क्रम :

प्रसाद के जीवन और साहित्य में आनन्दवाद का विकास भी क्रमशः हुआ है। साधना की तीव्रता के साथ ही इसका स्वरुप भी स्पष्ट और उज्वल होता गया। आनन्द-साधना सस्ती भावुकता पर निभर नहीं करती है, उसके लिए दर्शन का सुदृढ़ आधार चाहिए। कवि अथवा कलाकार की अपनी 'दृष्टि' अथवा 'दर्शन' धीरे-२ तथा बड़ी साधना के बाद रूप ग्रहण करता है। अतः कामायनी के आनन्दवाद के विचार-सूत्र उनके कामयानी से पूर्ववर्ती साहित्य में बिखरे हुए मिल जाते हैं। कुछ ग्रथों में आनन्दवाद का प्रतिपादन विशेष रूप से हुआ है और ऐसे ग्रन्थों में प्रमुख है–'कामना, नाटक तथा 'एक घूंट' एकांकी। 'कामना' का सूक्ष्म अध्ययन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि कामायनी के मूल आधार-तत्व उसमें विद्यमान हैं।

'कामना' का प्रतीक-विधान कामायनी के प्रतीक-विधान से बहुत साम्य रखता है। कामना के रूपकत्व की कामयानी के रूपकत्व का पूर्व प्रयोग कहा जा सकता है। मानव के मनो–बिकारों का मानवीकरण यहां भी किया है। यहां भी यान्त्रिक तथा नागरिक सभ्यता की वीभत्सता का चित्रण किया गया है। इड़ा के राज्य की तरह विलास का स्वर्ण और सुरा का मोह दिखलाकर एक प्रतीयमान व्यवस्थित, तथा आधुनिक शासन तन्त्र की स्थापना ध्यान देने योग्य है। 'कामना' में कामायनी जैसे अपूर्व महाकाव्य के बीज निहित थे, इसमें कोई सन्देह नही है।

आनन्द सम्बन्धी विचार प्रसाद जी के ग्रन्थों में यत्र–तत्र विकीर्ण मिलेंगे। 'कामना' और 'एक घूंट' में उनका उदार समावेश है, सम्भवतः विषय के कारण ही ऐसा सम्भव हुआ है। कामायनी का प्रतिपाद्य विषय तो है ही आनन्दवाद और उसमें आनन्द का व्यवस्थित, प्रौढ़ और महान दर्शन हमें प्राप्त होता है। परन्तु यह सब विधुत्पात जैसे एकाएक सम्भव नहीं हुआ है। बल्कि प्रसाद की अपनी साहित्य साधना के साथ-२ यह भी क्रमशः विकसित हुआ है।

कामयानी का सर्ग-क्रम 'चिंता से आनन्द'

कामायनी महाकाव्य की मनोविज्ञानिकता बहुत मुखर और स्पष्ट है। इसके सर्गों के नाम भी मानसिक प्रवृतियों के आधार रर रखे गये हैं। इन प्रवृतियों का बहुत ही सुन्दर और अल्हादक मानवीकरण किया गया है। कामायनी की कथा मानसिक विकास की कथा भी है। यहां पर द्रष्टव्य है, कि महाकवि प्रसाद कामायनी का प्रारम्भ 'चिंता' से क्यों करते हैं तथा उसकी परिणति 'आनन्द' में किस लिए करते हैं तथा बीच में सर्गो का क्रम चिंता से मानन्द की विजय यात्रा में मनोविज्ञात की दृष्टि से कहां तक सहायक और उपयुक्त है।

मनु की चिन्ता का स्वरूप क्या है? उनकी चिन्ता के मूल में उनका अपने आप से भयभीत होना है। उन्होंने जिस देव-संस्कृति का विध्वंस देखा है, उसकी कल्पना बार-बार दुःखी कर देती है। उन्हें अब अपने ऊपर कोई विश्वास नहीं रहा है। उन्हें अपने आगे कोई

लक्ष्य, कोई आनन्द नहीं दिखाई पड़ता है। देव-संस्कृति के अंश अपने आप को मनु सम्बोधित करते हैं :

आज अमरता का जीवित हुं।
मैं वह भीषण जर्जर दम्भ,
आह सर्ग के प्रथम अंक का
अधम पात्रमय सा विष्कम्भ।

भविष्य में होने वाली दुर्घटनाओं का भय और उससे उद्भूत चिन्ता का निराकरण तब हो सकता है जब मन में आशा का उदय हो 'आशा' ही हमें विश्व के सौंदर्य-दर्शन तथा अपने ऐश्वर्य की अभिव्यक्ति के लिए प्रेरित करती है। प्रलय के बाद प्रकृति का रूप निखर आया है। आशा अब मनु को प्रकृति सुन्दरी के सौन्दर्य को निरखने के लिए प्रेरित करती है।

नवोदित आशा मनु को अपने अकेलेपन से निकाल कर किसी साथी के लिए प्रेरित करती है। 'श्रद्धा' का आगमन उनका यह अभाव पूरा करता है। श्रद्धा का सामीप्य और सहयोग ही उनके नये जीवन का अग्रदूत बनता है। मनु अपने जीवन का नया अध्याय प्रारम्भ करते हैं। उनके जीवन में श्रद्धा के प्रवेश के साथ ही यह सब सम्भव हो सका है।

मनु और श्रद्धा का मिथुन 'काम' द्वारा परस्पर आकृष्ट होता है। इसी से 'वासना' उदभूत होती है श्रद्धा तो है ही कामदेव की पुत्री। अत: उसमें भी संसार और उसके कार्यों को अभिप्रेरित करने की वही शक्ति है मनु जब 'चिन्ता' से उभर कर 'आशा' से सम्पृक्त होकर 'श्रद्धा' से संयुक्त हो जाते हैं तब 'काम' और 'वासना' से अभिप्रेरित होते हैं।

'वासना' के आगमन के साथ 'लज्जा' की अनुभूति स्वाभिक है, परन्तु श्रद्धा इस स्वभाव को हटा देती है। और मनु से सन्धि कर लेती है। वह कहती है :

आँसू के भीगे आंचल पर
मनु को सब कुछ रखना होगा,
तुमको अपनी स्मित रेखा से
यह सन्धि पत्र लिखना होगा।

मनु और श्रद्धा की यह सन्धि, यह समझौता उन्हें कर्म के प्रागंण में ला देता है। परन्तु मनु का अंहकारी आत्मकेन्द्रित तथा अविकसित मन 'ईर्ष्या' का शिकार हो जाता है। जीवन के कर्म क्षेत्र में 'ईर्ष्या' स्वाभाविक है क्यों कि मन किसी के भी अच्छे काम को सहन नहीं कर पाता है। और जब मन अपनी मनमानी करता है तो वह अपने कार्य की सत्यता सिद्ध करने के लिए 'बुद्धि' अथवा 'इड़ा का आश्रय लेता है।

श्रद्धा का 'स्वप्न' वस्तुतः जीवन में स्वप्न देखने तथा उनकी भविष्यवाणी की शक्ति का परिचायक है। बुद्धिवाद का अतिचार 'संघर्ष' रूप में परिवर्तित होना स्वाभाविक है। जिस जीवन का आधार ही प्रतिद्वन्द्विता तथा अन्य भौतिक सफलता हो वह संघर्ष को आमन्त्रित करेगी ही

आधुनिक युग में व्यक्ति तथा राष्ट्रों के संघर्षों के पीछे शस्त्रों की होड़, शक्ति का प्रदर्शन तथा प्रभुत्व की प्रधानता है।

'संघर्ष' का अवश्यम्भावी परिणाम 'निर्वेद' होता है। दो स्वार्थों का टकराव जहां होगा वहां संघर्ष इतना दुर्धर्ष होता है कि जीत हो या हार, व्यक्ति वैराग्य और उदासीनता की भावना से अभिभूत हो जाता है और कभी-कभी यही भावना 'दर्शन' की ओर हमें प्रेरित करती है। तथा यदि दृढ़ श्रद्धा भावना तथा तपश्चर्या हो तो साधक 'रहस्य' प्राप्त करने के लिए जीवन की गहराइयों में चला जाता है और जीवन की बलि देकर भी सत्य के विराट दर्शन करता है। यह सत्य कुछ नहीं बस परम और अखण्ड 'आनन्द' है। यही जीवन का परम पुरुशार्थ है। यही वह मूल तत्व है जिसे प्राप्त करने पर कुछ प्राप्त करना शेष नहीं रह जाता है। आप्तकाम से आत्मकाम और आत्मकाम से आकाम होकर जीवन का तटस्थ द्रष्टा बन जाता है। तथा महाचेतना में अवस्थित होकर परम, अखण्ड और दिव्य आनन्द का अधिकारी बन जाता है। 'चिन्ता' से आनन्द तक की यही विजय-यात्रा अपने में ही सीमित मन की वैश्व मन तक की विकास कथा है और कामायनीकार को अपने इस उद्देश्य में निःसन्देह आश्चर्यजनक सफलता प्राप्त हुई है।

मनु मन का विकास–क्रम तथा आनन्दोपलब्धि

मनु मन के प्रतीक हैं और मानव का यह मन ही उसे निम्न स्तर पर भटकाता रहता है और ऊंचे स्तर पर यही उसके सुख और आनन्द का कारण बन जाता है। तथा अतिमन (सुपरमाइन्ड) की अवस्था में महाचेतना में अवस्थित होकर परम स्वतन्त्रय और दिव्यानन्द का जनक हो जाता है। मन का यह वैचित्र्य आश्चर्यजनक है। अपनी निम्नावस्था तथा अहंकारावेष्टिता में यही मन बन्धन का कारण है और व्यापकत्व तथा औदात्य ग्रहण करने पर मुक्ति का अग्रदूत बन जाता है। मन का यह विकास-क्रम ही आनन्दसाधनों का भी विकास-क्रम है। जिसे मनु का जीवन स्पष्टतः प्रमाणित करता है।

अचेतन, अवचेतन, चेतन, अतिचेतन तथा सार्वभौम अतिमन की विकास यात्रा का भारतीय तत्वज्ञानियों ने विवेचन किया है। महर्षि अरविन्द ने सार्वभौम अतिमन के स्वरूप का भी दिव्य–दर्शन कराया है। उनके अनुसार इसमें तादात्म्य तथा परमाद्वयता की अनुभूति की शक्ति वर्तमान रहती है। यही महाचेतना की स्थिति है तथा अक्षय दिव्यनन्द की अवस्था है जिसे मनु ने सामरस्य, परमाद्वयता, प्रत्यभिज्ञान व सौंदर्य चेतना के माध्यम से प्राप्त किया है। श्रद्धा ही मनु की इस साधना, मन के चरम-विकास की नेत्री है। मन के विकास क्रम, आनन्द साधना के दिव्य पथ तथा जीवन के परम लक्ष्य अखण्ड आनन्द की संप्राप्ति ही महाकवि जयशंकर प्रसाद के कामामनी महाकाव्य का साध्य है और यह साध्य संप्राप्ति कर कामायनीकार आन्तरिक तथा यथार्थ आत्मतोष प्राप्त कर सका है।

कामायनी का आनन्दवाद तथा अन्य आनन्दवादी दर्शन

आनन्दवाद की अन्य आनन्दवादी दर्शनों से तुलना करने पर इसकी महत्ता स्पष्ट हो जाती है अन्य बहुत से शैव दर्शन तो द्वैतवादी हैं तथा उनका दर्शनपक्ष इसके आधार दर्शन प्रत्यभिज्ञान के समान विकसित और प्रौढ़ नहीं है शक्ति दर्शन में भी वही द्वैतता है। हां उसकी 'शक्ति' या 'देवी' को ऐसा लगता है कि प्रसाद जी ने श्रद्धा के रूप में अवतारणा की है।

उपनिषदों की परमाद्वयता, महाचेतना तथा आनन्ददर्शन से आनन्दवाद यथेष्ट प्रभावित है। भगवद् गीता के समत्वयोग तथा आनन्दवाद के सामरस्य सिद्धान्त, कृष्ण के विराट रूप के दर्शन तथा नृत्यशील नटराज के दर्शन, गीता की धर्म में सहायिका श्रद्धा भावना तथा आनन्दवाद की सूत्रधारिणी श्रद्धा भावना में साम्य होते हुए भी गीता का कोई सीधा तथा प्रत्यक्ष प्रभाव कामायनी के दर्शन पर परिलक्षित नहीं होता है। 'योगदर्शन' का योग हठयोग अधिक है जबकि आनन्दवाद में राजयोग या लययोग की साधना-प्रक्रियाओं का योग अधिक है वेदान्त में ज्ञान की अधिक प्रखरता है। वह आनन्दवाद की मधुर साधना कम है सूफी दर्शन लौकिक प्रेम को अलौकिकता प्रदान करने के बावजूद भी विरहोन्मुखी अधिक है। विशुद्ध आनन्दवादी कम।

फ्रायड का मनोविश्लेषण रोगी और असामान्य व्यक्ति का विषय अधिक है, आनन्दवाद के स्वरूप और जागरूक साधक का कम। कार्लमार्क्स का साम्यवाद भौतिकता तक ही सीमित हो गया है, आनन्दवाद के सर्वांगीण विकास के उद्देश्य का उसमें अभाव है। अरविन्द का आनन्द दर्शन इतना प्रखर, प्रौढ़ तथा तर्क सम्मत है कि आनन्दवाद की निर्माण-प्रक्रिया में उसके योग का कोई सहज अनुमान कर सकता है। सारांशतः आनन्दवाद शैवागमों, शाक्तगमों, उपनिषद, गीता वेदान्त तथा अरविन्द–दर्शन के विवेचन से साम्य रखते तथा प्रभावित होते हुए भी यह प्रसाद की जीवन साधना से अभिन्नतः सम्बद्ध है। तथा उन्होंने उसे जीवन में व्यवहृत करने का प्रयास करके इसकी महता और गरिमा को और भी बढ़ा दिया है।

महाकाव्य के लिए नव्य दृष्टि एक विराट कल्पना तथा उदास भावना की अपेक्षा रहती है कष्ट सहने की अपार क्षमता, नीलकण्ठ की तरह अपमान, उपेक्षा तथा असफलता का गरल पीकर भी मुस्कराने की अद्भुत आत्मिक शक्ति, अपने महदनुष्ठान में वैसी दृढ़ता, निष्ठा और साहस ही महाकाव्य का सृजन कर पाते हैं। इन्ही सभी गुणों से प्रतिभा सम्भव और सम्पन्न होती है। प्रसाद जी में यह सब था– यह साधना, ही 'आनन्दवाद' के जीवन-कल्प के रूप में परिणत हो गई। वे वह सब कर पाये जो निराला, पन्त, महादेवी जैसे छायावाद के स्तम्भ भी न कर पाये। वे कामायनी जैसे महाकाव्य का सृजन कर सके जिसका आधुनिक जीवन की विकृतियों विसंगतियों तथा विषमताओं के मूल कारण का अन्वेषण कर नित्य सामरस्यजनित तथा श्रद्धान्वित आनन्दवाद की प्रतिष्ठा करना उद्देश्य है।

भारतीय आनन्दवादी विचारधारा का यह 'प्रसाद पुनराख्यान' अपने आप में अद्वितीय और अनुपम है। वे इस दृष्टि से वर्डसवर्थ, शैली, गेटे, दान्ते, कालिदास व तुलसीदास उच्चकोटि के महाकवि हैं। उनका महाकाव्य हिन्दी के आधुनिक युग के महाकाव्यों में निस्सन्देह सर्वोत्कृष्ट कृति है। उन्होंने इस महाकाव्य के सन्देश को अपने जीवन में जिया है और सच तो यह है कि व्यक्ति और साधक के रूप में जिया गया महाकाव्य यद्यपि अनलिखा होता है, परन्तु उस लिखे हुए महाकाव्य से कही श्रेष्ठ और महान होता है।

राजकीय महाविद्यालय मण्डी
मण्डी–175001 (हि०प्र०)

सारी गढ़

—ग्रमर पालशर

सारी गढ़ कोठी सारी के सभी देवताग्रों का मूल गढ़ है। किसी समय यहां पर राजाग्रों का ग्रावास था। विशेषकर यह उनकी ग्रात्मरक्षा का युद्ध स्थल रह चुका है।

यह जगह कुल्लू से सीधी चढ़ाई में करीब सात-ग्राठ मील ऊंचाई पर स्थित है। यहां पहुंचने में एक जादुई सी विधि का ग्रनुभव होता है। देखने में निकट ही लगता है किन्तु वहां पहुंचते-पहुंचते नाकों में दम ग्राता है। बिल्कुल शिखर पर चढ़कर किले की ले ग्राऊट देखी जा सकती है। यहां यह पचास फुट की दूरी पर धार कट कर करीब सात गहरी नालियां बनी हुई हैं। ये नालियां दुश्मनों पर बार करने के लिए बनाई गई थीं।

यह मैंने ग्रपनी ग्रांखों से देखा ग्रौर ग्राश्चर्य में डूब पड़ने की बात है। वहां तीन किलो से ग्रट्ठाईस तीस किलो के बजनदार गोले दिखाई दिए। यह गोले बड़े सख्त पत्थर के बने हुए किसी दुश्मन द्वारा फैंके गए हैं क्योंकि सुनने में ग्राया कि सारी गढ़ के गोले दूसरे कई खण्डहरों में उपलब्ध है, खैर ग्राड़े समय जब राजाग्रों को कठिनाइयों का सामना करना पड़ा तो उन्होंने कोठी के सभी देवताग्रों की शक्ति को ग्रपने गढ़ में उपार्जित किया ग्रौर उन सभी देव शक्तियों की स्थापना दुर्ग के भीतर ही की।

ग्राज यह जगह पत्थरों का एक विशाल खण्डहर है। ग्रौर हां, एक मन्दिर वहां ग्रभी भी मौजूद है, जहां ग्राज भी इलाके भर के हर देवता मनौती देने ग्राते हैं।

जनश्रुति के ग्राधार पर यह निवास जोगनियों (योगनियों) का नंगा निवास है। इसलिए वहां हर कभी नहीं जाते।

ग्राज भी वहां जाने के लिए प्रतिबन्ध है। केवल उसी दिन जा सकते हैं जिस दिन मन्दिर की मुरम्मत की जानी हो। इसकी मुरम्मत हर पन्द्रह बीस साल बाद की जाती है। इस बार दस बैशाख की रात को सभी लोग वहां पहुंचे थे ग्रतः ग्यारह बैशाख की प्रातः तीन बजे मन्दिर की छत मुरम्मत की गई। करीब १६ भेड़-बकरियों की बलि भी दी गई। कहा जाता है कि यहां पर यदि मन्दिर की मुरम्मत करते समय बलि न दी जाए तो व्यक्ति के लिए खतरा मोल लेना पड़ता है।

यदि कोई व्यक्ति वहां ग्राग्रह पूर्वक जाए तो सुना है कि वहां बड़े खतरनाक रूप में योगनियों के साक्षात दर्शन होते हैं। लगभग यह प्रमाण है कि बहुत से व्यक्तियों से यह घटनाएं हो चुकी हैं।

मूल रूप से सारी गढ़ में जोगनियों का निवास है। कहा जाता है कि यदि इलाके भर में कभी किसी भी तरह की मुश्किल आए, जैसे वर्षा का न होना या बिमारियां फैलना, आदि के रोकथाम के लिए देवी देवताओं के मुख सारी गढ़ में जाकर जोगनियों की मनौती देकर इलाके भर की कठिनाइयों से छुटकारा पा लेते हैं। यह भी सुना है कि वहां पर विशेष सामर्थ्य रखने वाला गुरू ही जा सकता है, अन्यथा बहुत से गुरू वहां जाकर मर भी जाते हैं।

वैसे भी इस जगह पर भयानक दृष्य देखने में आते हैं। बहुत से लोगों का कहना है जो अभी भी जीवित है उनमें से श्री शकतू राम भेखली गांव के निवासी ने यह सब अपनी आंखों से देखा है कि कभी-कभी जोगनियां बड़े भयंकर रूप में दिखाई पड़ती है साथ ही उन्होंने कई तरह की भयंकर आवाज को भी सुना है।

यह सब भयंकर आवाज और रूप इसीलिए सुनाई या दिखाई पड़ते हैं ताकि जोगनियों के मन्दिर तक कोई न पहुंचे। ठीक गढ़ के अन्तिम से पहले चरण में देवी भुवनेश्वरी का स्थान भी स्थित है।

इसके अतिरिक्त इस जगह पर वे व्यक्ति जा सकते हैं जो किसी की चीज की प्राप्ति चाहे मगर जिगर में सामर्थ्य हो।

जोगनियों से मूल अर्थ अप्सराओं से है। ये अपसराएं दिल्ली से लेकर यहां सारी गढ़ तक पहुंची हैं। यहां इनकी भेंट भुवनेश्वरी से हुई है। और देवी भुवनेश्वरी ने उन्हें इसी जगह पर स्थल देकर स्थित कराया।

सारी का नाग देवता :

यह नाग स्थली करीब सारी गढ़ से एक मील की और ऊंचाई पर स्थित है। कहते हैं जब अप्सराएं उधर गुजर रही थीं तो नाग देवता उनकी सुन्दरता देखकर मुग्ध हुए और उनके प्रति आकर्षक होकर कुछ अश्लील शब्द कहे। इस पर जोगनियों ने नाग की ज्यादती पर उसे शाप देते हुए कहा—"तुम्हें डूब मरना चाहिए" सुना है तभी से वहां पर पानी एकत्रित होने लगा और नाग देवता भयभीत हुए और उसका मन्दिर सरोवर से घिरने लगा फिर कुछ ही क्षणों बाद उसका मन्दिर सारा पानी में डूब गया।

बेशक विश्वास नहीं आता हो, किन्तु जब मैंने वह जगह अपनी आखों से जाकर देखी तो निश्चय ही नाग देवते का मन्दिर पानी में डूब चुका होगा। क्योंकि मन्दिर ऐसी जगह पर बना हुआ है जहां की धरती ओखली की तरह बनी हुई है। ठीक नीचे बीचों-बीच मन्दिर हैं। फिर नाग देवता आत्मरक्षा के लिए तालाब में तैरते रहे और साथ ही अप्सराओं से निवेदन करते रहे कि मुझे बचाओ, मुझे बचाओ। फिर तुमसे ऐसी बातें नहीं करूंगा।

इस पर काफी देर बाद अप्सराओं को नाग देवता पर काफी दया आई तो बोली—"पानी अब सूख जा।" यह कहने की देर हुई कि पानी सूख गया। ताज्जुब की बात यह है कि उस ओखली

नुमा जगह पर आज भी यदि महीनों बर्फ पड़ती है या पानी बरसता है किन्तु पानी जमा नहीं होता। आस पास की हर जगहों पर पानी जमा होता है मगर वहां आज भी बिलकुल सुखा ही पड़ा रहता है।

इस नाग मन्दिर का निर्माण भी हर पन्द्रह बीस वर्ष बाद होता है और करीब तीन भेड़ बकरियों की बलि यहां भी चढ़ाई जाती है।

कशमट्टी की जोगनियां और एक प्रत्यक्ष प्रमाण :

कशमट्टी लग की दाईं बैली का सबसे पीछे का स्थल है। कुल्लू से करीब १८ मील दूर यह अप्सराओं की एक विशेष जगह है। सुना है कि इन जोगनियों के पास बहुत ही ज्यादा तप बल और प्रचण्ड शक्ति है।

एक बार कुल्लू के सारे इलाके में वर्षा के अभाव से सूखा पड़ गया। इसलिए कुल्लू के राजा वर्षा मांगने के लिए कशमट्टी में जोगनियों के स्थल पर पहुंचे। वहां उन्ही ही जोगनियों के गुरू से अर्ज किया। गुरू ने वर्षा न होने की बात कही मगर राजा नहीं माना। विवशता गुरू को कहना ही पड़ा कि निकट भविष्य में वर्षा की जाएगी वह दिन भी बताया जिस दिन वर्षा होनी थी।

राजा साहिब सन्तुष्ट हो कर अपने महल वापिस आए और उसी दिन का इन्तजार करने लगे जिस दिन जोगनियों के कहे अनुसार बरसात होनी थी। मगर सब झूठ निकला। राजा साहिब बड़े क्रुद्ध हुए और उन्होंने अपने दरबार से एक व्यक्ति गुरू को बुलाने के लिए भेजा और कहा, 'यदि तुम गुरू को लेकर नहीं आए तो तुम्हें कोहलू में कुचला जाएगा'।

वह व्यक्ति कशमट्टी में पहुंचा। जैसे-कैसे गुरू को प्रसन्न करके राजमहल में पहुंचाया। उसे राजा के सामने पेश किया। राजा ने उसे अपमानित स्वरों में कहा, 'तुमने झूठ कहा है कि फलां दिन में वर्षा होगी इस लिए तुम्हें कोहलू में कुचला जाएगा।'

यह सुन कर गुरू के पैरों तले की धरती खिसक गई वह डर के मारे कांप उठा। कांपते हुए उसके शरीर से पसीने की बूंदें छूट पड़ी। और सारे कपड़े भीग गये।

राजा ने फांसी में चढ़ाये जाने वाले व्यक्ति के शरीर से पहले कभी भी इतना पसीना गिरते हुए नहीं देखा था। इसलिए वे बोले, अच्छा गुरू को कल सवेरे तक बन्द कमरे में रखा जाए ताकि यह कहीं भाग न जाए। कल सवेरे तक इसकी परीक्षा करते हैं उसके बाद इसे कुचला जाएगा।

रात हुई गुरू अपने बन्द कमरे में मौत को नजदीक आते हुए रो रहा था और सारी दुनियां अपनी सुख की नींद में सोई पड़ी थी।

अकस्मात रातों-रात आकाश में बादल छा गये और पानी इस कदर बरसा कि सर्बरी नामक नदी ने विराट रूप धारण किया।

कुछ ही पलों में नदी ने रूख पलटा और राजमहल की ओर बढ़ चली । पानी की भयंकर आवाज सुनकर सभी लोग जागे और सारा राजदरवार स्तब्ध रह गया । अब क्या किया जाए । यदि इसी ही तरह रहा तो महल की खैर नहीं ।

राजा साहिब समझ गए उन्होंने उसी समय बन्द कमरे में जाकर गुरू के पास घुटने टेक कर निवेदन किया, और कहा देवी मैं वर्षा के थमते ही स्वयं कशमट्टी चला आऊंगा और जो कुछ भी तुम चाहती हो वही भेंट करूंगा । कृपया मेरे इन महलों को बचाइए । फिर कभी भी ऐसी गलती नहीं करूंगा । कहते हैं फिर वर्षा थम गई और नदी अपने असली रूप में लौट आई ।

मगर जो कुछ हुआ तो वह आज भी प्रत्यक्ष है । ढालपुर और सुलतानपुर कुल्लू एक दूसरों की समता में बिलकुल समतल है । मगर बीच का जो फासला सर्वरी नदी ने बांट दिया है वह करीब तीन फर्लांग से कम नहीं होगा ।

छोटी सी सर्वरी नदी कभी यह भी कर सकती थी, यह स्वयं अपनी आंखों से देखा जा सकता है । कहते हैं कि यह सब लीला सर्वरी नदी के द्वारा कशमट्टी नामक जगह की जोगनियों ने ही राजा की ज्यादती पर करवाया था ।

भुवनेश्वरी :

कन्दरा— यह गुफा भेखली मन्दिर से करीव 200 गज की दूरी पर दाईं ओर स्थित है । कहा जाता है कि देवी का जन्म इसी कन्दरा में हुआ था । और यहां से दो शक्तियां एक साथ बाहर आ निकली थो ।

इसमें से एक शक्ति पुईद नामक गांव में उड़ते हुए चली गई । और दूसरी भेखली में ही रही जो पुईद गांव के लिए प्रस्थान कर गई उसके पद चिन्ह जगह जगह पर आज भी देखे जा सकते हैं । कन्दरा जो कि करीब बारह फुट ऊंची और पन्द्रह ईंच चौड़ी और लगभग 35 फुट लम्बी है । फिर अन्दर से दोनों ओर के लिए रास्ते हैं । जो केवल दूर से देखे जा सकते हैं । वहां तक पहुंच पाना कठिन है क्योंकि यह गुफा जितना अन्दर जाएं उतनी ही संकीर्ण होती जाती है ।

कहते हैं कोई एक पालसरा बृद्ध गांव की सभी बच्चियों के साथ प्रतिदिन खेला करता था । एक दिन उसे एक ऐसी बच्ची दिखाई दी जिसके पांव धरती पर नहीं थे वह सबके साथ उड़ते हुए खेल रही थी । वह बूढ़ा उसे देखकर स्तब्ध रह गया तो उसने उस बच्ची को पकड़कर अपनी गोद में रखा । वह बेहद सुन्दर थी । बूढ़े ने उससे परिचय पूछा तो कोई भी उत्तर न मिल सका । आखिर उस बच्ची ने बूढ़े से पूछा—'तुम क्या चाहते हो ।' इस पर बूढ़े ने उत्तर दिया– 'तुम्हें अपनी गोद में ही रखना चाहता हूं । और तुम्हें अपनी धर्म पुत्री के रूप में रखूंगा ।' बच्ची ने इसके बाद कहा– 'यही सही आज के बाद मेरा मुकुट तुम्हारी गोद में रहेगा और मेरे स्थल में तुम्हारी मूर्ति बनी रहेगी । और सुनो सबसे पहले तुम्हारी पूजा होगी उसके बाद मेरी, क्योंकि तुम बहुत दयालु पुरुष हो ।'

लगभग इस बात पर भी सन्देह नहीं है क्योंकि भोखली के मन्दिर में आज भी उस बूढ़े पालसरे की मूरत विद्यमान है। और उसे पूजा भी जाता है। यह मूर्ति उसी बूढ़े की है, और शतप्रतिशत पत्थर की साकार मूर्ति है।

उसके बाद पालसरा खानदान देवी को अपनी बहिन मानता रहा है। कुल्लु में अब तक जैसे बहन को 'पाहुड़' ले जाया जाता है यह प्रथा अभी तक भी कहीं-२ जीवित है।

पालसरा खानदान में वैशाख के भोखली मेले को लच्छी राम नाम का व्यक्ति देवी के लिए पाहुड़ ले जाया करता है। तब तक मेले का आरम्भ नहीं किया जाता।

साथ ही देवी के गुरू का सरताज आज भी श्री लच्छी राम की गोद में गिर जाता है। इसके बाद देवी का गुरू लोगों की अर्ज पूरी करता है।

भुवनेश्वरी का प्रचाण्ड रुप

यह देवी दिन के समय कभी बाहिर नहीं निकलती। मगर एक बार कुल्लु दशहरे के समय पर राजा साहिब ने आग्रह किया कि देवी भुवनेश्वरी को भी दशहरे में लाया जाए। यह सोच कर उन्होंने महल से कुछ व्यक्ति भेखली के लिए भेज दिए। जैसे कैसे डरा धमका कर लोगों को कुल्लू दशहरे में लाने के लिए विवश किया आखिर वैसा ही हुआ। देवी का रथ कुल्लू की करीब तीन सौ गज तक लाया गया था। कि कुल्लू के महल में आग लग गई। आग किस तरफ और किसने लगाई, कोई पता नही।

कहते हैं राजा साहिब शक्ति का बल समझ गये वे नंगे पैर वहां से दौड़ते हुए शक्ति के रथ के पास हांफते हुए पहुंचे। नाक रगड़ते-२ रथ को वहीं पर थाम लेने के लिए कहा। और जेब से (16) सोलह रुपये निकालकर भेंट चढ़ाई साथ में राजा ने माफी मांगते हुए देवी के गुरू से दण्ड मांगा।

गुरू ने बदले में कुल्लू के ठाकुरद्वारे से लेकर भेखली तक पक्का और सीढ़ीनुमा रास्ता बनाने के लिए कहा।

राजा साहिब ने सहर्ष मंजूर किया और लौट गए। तभी ही महल में लगी हुई आग भी शान्त हुई।

कहते हैं, कि आधा महल उस सयय भस्म हो चुका था। फिर देवी की पालकी वहीं से लौटा दी गई।

वे रुपये आज भी देवी के मुख द्वार में जड़ाये गये हैं। साथ ही वह रास्ता भी आज सही सलामत है।

मन्दिर– यह मन्दिर मकड़ी के जाल के आकार में बना हुआ है । मन्दिर के भीतरी दिवारों में अनेक प्रकार की चित्रकारीयां बड़ी सुन्दर है। मन्दिर का फर्श संगमरमर से निर्मित है । रहने के लिए काफी ज्यादा प्रबन्ध है ।

पराशर ऋषि

पराशर स्मृति के अनुसार पराशर ऋषि का वास्तविक स्थल कमान्द रहा है । यह स्थल कोठी महाराजा में पचाइली नाले से करीव तीन मील ऊंची पगडण्डी के शिखर पर स्थित है । कमान्द नामक गांव से करीव तीन फर्लांग की ऊंचाई पर पराशर का मन्दिर है ।

शान्त और बीहड़ जंगल तथा देवदार के विशाल पेड़ों के बीच छोटी सी समतल जगह है । यहां पर तीन सरोवर हैं, जो पानी से हमेशा भरे रहते हैं । कहते हैं कि जब कभी पानी सूख भी जाए तो पराशर स्मृति के पाठ करने पर सरोवर फिर से भर जाते हैं ।

वास्तविक अर्थों में यह जगह पराशर जी की तपो भूमि रही है । कहते हैं कि जब पराशर ऋषि तपस्या में आंखें बन्द करके बैठते थे । उनकी पत्नी उनकी देख-रेख में लगी रहती थी । कि कहीं कोई आकर तपस्या में बाधा न डाले ।

एक दिन ऋषि की पत्नी किसी काम से कहीं दूर चली गई । पीछे से किसी औरत ने उनके रंग रूप के सौंदर्य पर मुग्ध होकर उनके गले में हार डाल दिया । मगर पराशर जी अपनी तपस्या में मग्न रहे । उन्होंने आंखों की पलके भी नहीं उठाई ।

जब काफी देर बाद उसकी पत्नी लौट आई तो उनके गले का हार देखकर वह समझ गई कि पराशर जी मेरे अतिरिक्त किसी दूसरी स्त्री से भी प्यार करते हैं । तभी तो गले में हार पड़ा हुआ है । यह सोचते हुए उसे जलन हुई और कर्कश होकर बोली, 'यह हार तुमको किसने पहनाया है, तुम सच-२ बताओ क्या तुम मेरे अतिरिक्त दूसरी औरत से भी प्यार करते हो ?'

पराशर ने बहुत समझाया, कहने लगे कि यह सब झूठ है । तुम्हें व्यर्थ का संशय पैदा हो रहा है मगर उसकी पत्नी नहीं मानी ।

तब पराशर जी ने अपनी समतल भूमि के चारों ओर रेखा खींच दी और कहा कि इस सीमा के अन्दर आज के बाद तुम्हारे अतिरिक्त दूसरी कोई औरत न आएगी ।

आज भी पराशर ऋषि की उस स्थली में जाना औरतों के लिए कड़ा निषेध है । वहां केवल पुरुष लोग ही जा सकते हैं ।

पराशर जी का मन्दिर :

इस मन्दिर की बनावट अपने एक अनोखे ढंग की है । चार छतों वाला यह मन्दिर करीव 80 फुट ऊंचा है । यहां की काष्ठ कला-कृति प्राचीन समय की संस्कृति को जीवित कराती है ।

सोमसी

कहते हैं कि यह मन्दिर बारह वर्ष के बालक द्वारा निर्मित हुआ है बराह वर्ष तक इसका निर्माण चलता रहा ।

हर सांझ को विशिष्ट स्थान पर लकड़ी रखी जाती थी जहां मकड़ी अपनी लार छोड़ कर आकृति पैदा करती थी। सुवह जब होती थी तो बालक उसी के अनुसार लकड़ी कुरेद कर कला की आकृति स्पष्ट करता जाता रहा ।

बालक की आयु जब मन्दिर निर्माण करते हुए यौवनावस्था में पहुंची तो उसने मन्दिर का काम पूरा किया । अन्त में जब उस कलाकार ने अपना परिश्रमिक मांगा। तो बदले में किसी ने लकड़ी के छोटे-२ टुकड़े उन विशाल पेड़ों से निकाल कर दिए ।

कलाकार ने उन्हें थैले में डाला, तो मन ही मन तुच्छ समझते हुए घर की ओर लौटा ।

फिर रास्ते में उसे प्यास लगी । मगर पानी कहीं नहीं मिला। थक हार कर एक जगह पर बैठ कर मन ही मन सोचते हुए डंडे से मिट्टी कुरेदते हुए सोचने लगा, 'काश कि यहीं कहीं पानी निकलता । आखिर वैसा ही हुआ । वहां पर पानी की धारा फूट पड़ी । उसने पानी तो पी लिया फिर थैले में लाए हुए टुकड़े उस पानी में बहा दिए । कहने लगा, 'बारह वर्ष की कमाई' ।

वह निराश और हारे हुए मन को लेकर घर पहुंचा। घर वाले उसे देखकर प्रसन्न हुए, और कुशल मंगल पूछने लगे। आखिर में घर वालों ने पूछा, 'कितनी कमाई लाए हो।' उसने खाली बैग को उलटाते हुए कहा, 'इतनी' । यह कहने की देर हुई तो बैग से एक टुकड़ा लकड़ीनुमा बाहर निकला जो सोने की डली थी ।

वे सब हैरान रह गए । वह कलाकार स्वयं अवाक रह गया। वह यह देखकर वहां से दौड़ते हुए बोला, "ठहरो, मैं अभी आता हूं ।" दौड़ता-दौड़ता वह उस जगह पर पहुंचा जहां उसने लकड़ी के वे टुकड़े फैंके थे । मगर लाख तलाशने पर भी उसे कुछ न मिला ।

वह पानी, जो उसने कुरेदकर निकाला वह जगह खड़ीहार और बारहार के इलाके के बीचों-बीच है । पानी आज भी निरन्तर धाराप्रवाहित है ।

कमान्द के मन्दिर में सिगरेट बीड़ी ले जाना कड़ा वर्जित है और कमान्द के कोई भी लोग अभी तक सिगरेट तम्बाकू नहीं पीते और न ही तम्बाकू की बीजाई करते हैं । कहते हैं कि यदि कोई तम्बाकू की फसल पैदा करे तो उसके आम खेतों में कीड़े निकल आते हैं ।

कमान्द मन्दिर का दरवाजा साल भर में केवल दो बार खुलता है, और यह द्वार पश्चिम की ओर है, जबकि कुल्लू के सभी मन्दिर के द्वार इस ओर नहीं हैं ।

भीठा (हुरला) :

भीठा नामक मेला भुन्तर गड़सा सड़क के बीच हुरला नामक जगह पर ऋषि मार्कण्डेय और वीरपाल देवता के साथ मनाया जाता है, यह मेला चार वैशाख को प्रतिवर्ष धूमधाम से मनाया जाता है।

इस रोज प्रातः ही कुछ लोग बाजे के साथ ऊपर की ओर जाते हैं। वहां पर वे भीठा नामक देवता को सजाते हैं। जो कि बेलों से बनाकर बाहर से बराह नामक फूलों से सजाया जाता है। एक व्यक्ति उसे सिर पर उठाए बाजे के साथ दोपहर बाद नीचे उतरते हैं जहां पर मार्कण्डेय ऋषि और वीरपाल के रथ पहले ही सजे हुए होते हैं।

जब भीठा की पालकी गांव के कुछ दूर नाले पर पहुंचती है तो सजे हुए दोनों रथ उससे मिलने वहां चले जाते हैं। मगर मिलने से पहले ऋषि और वीरपाल की ओर से भीठे देवता से अच्छी तरह पूछा जाता है कि 'कहीं तुम भूत प्रेत तो नहीं हो। कहीं तुम भेष बदल कर तो नहीं आए हो ?'

'नहीं, नहीं मैं असली देवता हूं।' भीठा की ओर से कहा जाता है। ऋषि और वीरपाल की ओर से फिर पूछा जाता है। 'अगर तुम असली देवता हो तो हवा या तूफान साथ तो नहीं लाए ?'
'नहीं'
'ओले तो नहीं लाए ?'
'नहीं'
'पानी बहुत तो नहीं लाया ?'
'नहीं'

अर्थात भीठा नहीं, नहीं में उत्तर देकर स्वयं को पवित्र मानता है। जब हर तरह से भीठा देवता सही है तो ऋषि मार्कण्डेय और वीरपाल की ओर से उसे मिलने के लिए स्वीकृति दी जाती है।

फिर वे बारी-बारी से भीठा से मिलते हैं। मगर प्रत्यक्ष न कहकर देवता की दोनों पालकी भीठा को अपने मध्य रखकर अपने मन्दिर की ओर ले जाते हैं।

जब मन्दिर में पहुंचते हैं तो दोनों देवता और भीठा का एक साथ नृत्य होता है। लेकिन धीरे-धीरे ऐसा प्रतीत होता है कि भीठा वास्तव में राक्षस है और भेष बदल कर आया है। करीब एक घण्टे तक देवता उसे परखते हुए साथ-साथ अपने मध्य रखते हुए उसके साथ नृत्य करते हैं।

अन्त में जब देवशक्ति यह जानने में सफल होती है तो अपने शिष्यों से भीठा को मार डालने का आदेश देते हैं। बस फिर क्या ?

फिर तो करीब आठ-दस युवक तैयार होकर भीठा को नोंच-२ कर फैंकते हैं। कुछ देर बाद उसका लता से मढ़ा हुआ पिंड भी तोड़ा जाता है। सुना है कि मार्कण्डेय ऋषि के पास भीठा देवता बनकर विघ्न डालने आया था मगर वह भी राक्षस।

करीब चार बजे शाम को भीठा की मृत्यु हो जाती है।

मारर्कण्डेय ऋषि (मकड़सा)

इस जगह का अपना ही रूप है। यह समतल भूमि विपाशा के किनारे दाईं ओर स्थित है। वर्तमान समय में इस जगह को यहां के लोग मकराहड़ के नाम से पुकारते हैं। मगर यह नामकरण मकड़सा का ही विकृत रूप है।

किसी समय यहां माकड़ नामक राजा राज करता था और कुल्लू का नाम भी मकड़सा के नाम से ही जाना जाता था। ठीक यहीं पर मार्कण्डेय ऋषि का मन्दिर है।

जनश्रुति है कि मार्कण्डेय जी की वास्तविक जन्म भूमि यहीं पर रही है। यह सब १३ अप्रैल या १ वैशाख की तिथि के मेले में देखा जा सकता है।

यह भी सुना है कि किसी आदि समय में खेत में गोडी कर रही औरत के औजार से किसी धातु में लगने की आवाज आई। उस औरत ने कुछ और गहरा खोद कर वहां से चांदी का मुखड़ा प्राप्त किया।

वह मोहरा आज भी रथ में लगा हुआ रहता है। और निशान जो औरत ने तीखे औजार से मोहर की ठोढ़ी पर चोट की थी वह आज भी उसी तरह दिखाई देता है।

यह भी सुना है कि उस मोहरे की फिर से मुरम्मत की गई। मगर कुछ समय बाद वह चांदी का मुखड़ा स्वयं ही अपने उसी रूप में आ गया। कहा जाता है कि शेष सभी चांदी सोने के मुखड़े बदले गये। लेकिन उस असली मुखड़े को वैसे ही रहने दिया जाता है। कई बार उसके ठोढ़ी में लगे दाग को ठीक किया मगर सब व्यर्थ।

वह चांदी का मुखड़ा देवता के रथ में लगे हुए आज भी उस बात को प्रमाणित करता है। मेले के पालकी द्वारा मार्कण्डेय जी अपने जन्म कथा को प्रति वर्ष दोहराते हैं।

सबसे पहले पालकी दौड़ती हुई वहां जा पहुंचती है जहां मार्कण्डेय जी जन्म कर धरती पर आए। उसके बाद सारा रथ मिट्टी पर लेट जाता है। कहते हैं कि यह उनकी दूध पीने की अवस्था है।

इस ऋषि के गुरू नहीं है। था, मगर उसकी मृत्मु हो चुकी है। कहते हैं कि गुरू की मृत्यु का समय बारह वर्ष पूरे होने चाहिए। उसके बाद देवशक्ति द्वारा नये गुरू को धारण किया जाता है। इसलिए गुरू के होने तक के समय तक ऋषि की पालकी द्वारा ही सब जीवन परिचय दोहराया जाता है।

लोगों की भीड़ भी बहुत ज्यादा होती है। कहा जाता है कि मार्कण्डेय जी की मारकण्ड़ी जब गर्भ छोड़ गई, तो उसके बाद स्नान किया। वह स्नान आज भी मेले में आए हुए इच्छुक लोग मेले के दिन करते हैं। यह स्नान गढ़सा और व्यास नदी के संगम पर किया जाता है।

अधिकतर वे लोग दूर-२ से आते हैं जिन्हें भूत-प्रेत और जहर खिलाया हुआ होता है। स्नान करने के तुरन्त बाद वह सब कै करते करते निकल आता है।

रथ का स्नान भी उसी दिन वहीं पर किया जाता है। ठीक वैसे ही जैसे मां ने बेटे मार्कण्डेय का स्नान जन्म के तुरन्त बाद कराया था। इस मेले को मार्कण्डेय जी ने अपने जन्म दिन के तौर पर धूम-धाम से बनाया है।

मन्दिर में शिवलिंग है। कहा जाता है कि मार्कण्डेय ऋषि भी शिव के महान उपासक हुए।

मन्दिर में काष्ठ कला का चमत्कार भी है, और मन्दिर की बनावट भी बिलकुल अलग ही ढंग से की गई है। मन्दिर के साथ ही लगा हुआ मुर्दों का विश्राम स्थल भी है साथ ही मन्दिर के बाहर माकड़ राजा के महल के कुछ खण्डहर भी पड़े हुए हैं।

ठीक विपाशा नदी के पार सामने पार्वती की बनी हुई सदियों पुरानी पाषाण मूर्ति है। मन्दिर के आस पास बहुत बड़े-बड़े पेड़ हैं। यहां के लोगों का कहना है कि ये पेड़ भी आदि काल से ही अभी तक खड़े हैं।

महादेवी हिड़म्बा (ढूँगरी मनाली)

जब पांडव लोग बनवास के लिए निकले तो उन्होंने अधिकतर समय जिला कुल्लू के मनाली क्षेत्र में व्यतीत किया।

एक दिन भरी दोपहर में भीम से जागते रहने को कहकर सभी लोग अपनी मां कुन्ती सहित सो गए। आस पास की आबादियों में पेड़ पौधों से घना बीहड़ जंगल था। उसी क्षेत्र में राक्षस का निवास भी था। इनमें से हिड़म्ब प्रसिद्ध राक्षस था। वह भी जंगल में भोजन हेतू घूमने निकला।

घूमते फिरते हुए उसे किन्हीं देवता लोगों की बू आई। हिड़म्ब थक कर एक जगह बैठा रहा। उसने अपनी बहन हिडम्बा से किसी प्राणी को भोजन हेतू मार कर लाने को कह कर बाहर भेज दिया।

हिडम्बा चलते-चलते पांडवों के निवास पर आ पहुंची। उन्हें देख कर वह प्रसन्न हुई, मगर जब निकट आई तो भीम की सुन्दरता पर मुग्ध होकर बुराई मोल लेने से रह गई। उसके मन में आया कि क्यों न मैं इससे शादी करूं।

यह सोचकर उसने भीमसेन को लालायित करने के लिए अपना भेष बदल कर सुन्दर कन्या के रूप में परिवर्तित किया।

जब वह सुन्दर कन्या रूप में भीम के समीप आ पहुंची तो भीम ने उसे सचेत करते हुए कहा, "खबरदार, अगर किसी तरह की खराबी हमें पहुंचाई तो ?"

हिडम्बा ने लाख प्रयत्न करते हुए कि मैं राक्षिसी नहीं हूं, कहा, "मैं तुमसे शादी करना चाहती हूं।"

इस पर भीम ने कर्कश होकर कहा, "वाह, एक पिशाचिन, और उससे मैं शादी करूं? दूर हटो, हमारे यहां किसी तरह का हस्तक्षेप न करो।"

लेकिन हिडम्बा ने दृढ़ प्रतीज्ञा की कि मैं भीम से शादी करके ही रहुंगी। मगर भीम तैयार नहीं हुआ।

अन्त में भीम से हार कर हिड़म्बा उनकी मां कुन्ती के पैरों पर गिर कर भीम से शादी के लिए निवेदन करने लगी। भीम के आग्रह पर कुन्ती उससे शादी करने के लिए इनकार करती, किन्तु हिड़म्बा के सौंदर्य को देखकर कुन्ती ने भीम को उससे शादी के लिए बिवश किया।

भीमसेन अपनी मां का कहना टाल न सका। अखिर उसने स्वीकृति दी और हिड़म्बा से विवाह किया।

समय व्यतीत हुआ। बहन को लापता हुआ जानकर हिड़म्ब फिर से जंगल में भटका। जब उसे मालूम हुआ कि हिड़म्बा ने भीम से विवाह किया है, तो वह अपने खतरनाक रूप लेकर उनके आश्रम पर पहुंचा। बड़ी कशमकश हुई। हिड़म्ब ने बहन को उनसे लेने की बात तो कह ही दी, अपितु उन पांडव पुत्रों को मार डालने तक की धमकी दी।

भीम ने उसे कई बार समझाया, मगर हिड़म्ब नहीं माना। आखिर युद्ध हुआ। भाई से युद्ध देखकर हिड़म्बा बिलकुल खामोश रही। बल्कि वह तो यही चाहती थी कि भाई हिड़म्ब मारा जाए तो अच्छा ही है। उसने भी अपने पति भीम की ही सहमति दी।

काफी समय तक युद्ध चलता रहा। अन्त में जब भीम ने अपना वास्तविक बल प्रकट किया तो हिडम्ब का सिर रोहतांग में जा गिरा। वहीं पर एक सरोवर था उसमें हिड़म्ब का सिर जा गिरा और वहां से कन्दरा में घुसकर सागूछो नामक जगह में जा फंसा।

उस जगह पर आज भी कभी-कभी किसी को मुंह से पानी पड़ने की आवाज सुनाई देती है। यहां के ग्राम लोगों की धारणा है कि यहां भैंस का सिर फंसा है और उसी के मुंह से पानी गिरते हुए यह आवाज निकलती है।

जहां पर पांडवों ने आश्रम डाला था उस जगह को आज ढूंगरी नाम से पुकारते हैं। यह मनाली के निकटतम ही है। और यहां आज भी हिडम्बा देवी का प्रसिद्ध मन्दिर है। बहुत बड़े मन्दिर के अन्दर एक विशाल चट्टान है। उसी चट्टान के नीचे एक गुफा है।

यह सम्भव है कि इसी गुफा में भीम ने हिड़म्बा से विवाह किया हो।

इस मन्दिर की इस विशाल चट्टान की गुफा के नीचे एक गहरी दरार है, जहां आज भी भैंस और भेड़ बकरियों की सैंकड़ों बलि प्रतिवर्ष भेंट की जाती हैं। कहते हैं यह दरार आज तक कभी भी बलि दिए जाने वाले जानवरों के खून से नहीं भर सकी। लगभग यह कथन वास्तविक है।

मणिकर्ण का राम और नगर की सीता

किसी समय कुल्लू के राजा के शरीर से कुष्ट रोग निकला और राजा साहिब बुरी तरह इस रोग से ग्रसित हुए। इस रोग के बचाव के लिए उन्होंने अनेक इलाज किए। मगर स्थिति बिगड़ती ही गई।

ठीक उसी समय कुल्लू से दूर 12 मील की दूरी पर किसी संत महात्मा ने अपना मठ स्थापित किया था। जिसमें सैंकड़ों साधु संत शिक्षा ग्रहण करने के लिए सम्मिलित थे। राजा साहेब जब कुष्ट रोग से छुटकारा लेने के लिए अति विवश हुए तो उन्होंने अपने दरबार से किसी व्यक्ति को नगर वाले संत महात्मा के पास भेजा।

दरबारी व्यक्ति ने राजा साहब की स्थित के विषय में संत महात्मा को बताया। इस पर महात्मा ने राजा को कुष्ट रोग से छुटकारा पाने का मार्ग ढूंढ निकाला और कहा, 'राजा साहब को मेरे पास भेज दीजिएगा मैं उन्हें सब कुछ बता दूंगा।" यह सुनकर वह व्यक्ति वहां से लौट आया। राजा के पास पहुंच कर उसने सब बातें बताई। इस पर राजा साहब दूसरे ही दिन सुबह दुखी हालत में नगर पहुंचे।

संत महात्मा ने उनका आदर सत्कार किया। और बोले, "तुम्हें अयोध्या से सीता और राम की मूर्ति लानी होगी। और उसके बाद उन्हें तुम्हारे द्वारा स्थापित कराया जाएगा। और इसी ही मंगल कार्य में तुम्हारा हित है। और कुष्ट रोग से मुक्त हो सकते हैं।" यह सुन कर राजा साहब ने उनकी बात को सहर्ष स्वीकृत किया और घर लौट आए। फिर दूसरे ही दिन उन्होंने किसी पण्डित को अयोध्या से मूर्ति चुरा लाने को कहा। क्योंकि संत महात्मा का कहना था कि वह मूर्ति लाई जाए जिसकी प्रतिदिन मन्दिर में पूजा होती हो।

पण्डित साहब तैयार हुए और करीब दो मास में पैदल चल कर अयोध्या जा पहुंचे।

अयोध्या पहुंचकर उन्होंने देखा कि प्रतिदिन पूजी जाने वाली मूर्तियों को चुरा लाना सम्भव नहीं। अतः वे उसी मन्दिर में झाड़ू देने के काम पर लग गये। बहुत से दिन इसी तरह व्यतीत हुए अन्त में एक दिन किसी राजा के वहां से मन्दिर के सभी सदस्य और पुजारियों सहित निमन्त्रण आया।

पुजारी साहिब विवश होकर झाड़ू देने वाले पण्डित से एक दिन की पूजा करने को कहकर स्वयं निमन्त्रण में सम्मिलित हुए।

ठीक उसी दिन झाड़ू देने वाले पण्डित ने सीता और राम को मूर्तियां उठा लाई। वह मूर्तियों को लेकर दिन रात दौड़े-२ भागते हुए कुछ दिनों बाद हरिद्वार में पहुंचा।

अयोध्या में मूर्ति चोरने का समाचार हवा की तरह फैला। वहां से छः सात युवा लोग उसी पण्डित की तालाश में निकले। ठीक जिस समय कुल्लू वाले पण्डित सीता और राम की मूर्तियों को हरकी पौढ़ी पर स्नान करा रहे थे, उसी समय मूर्तियां तलाशने वाले अयोध्या से आए युवक वहां आ पहुंचे।

अभी पण्डित जी ने मूर्तियों को स्नान कराकर नीचे रखा ही था कि उन युवक अयोध्या निवासियों ने पण्डित की पिटाई आरम्भ की।

यह देखकर हरिद्वार के पण्डितों ने लड़ाई शान्त कराकर कारण पूछा। युवकों ने पण्डित को चोर प्रमाणित कर मूर्तियों को उठाने के लिए मूर्तियों को स्पर्श किया मगर मूर्तियां यों जमी रही जैसे वे वही पर जकड़ी हों। उन सभी अतोध्या युवकों ने बारी-२ से मूर्तियां उठाने का भरसक प्रयत्न किया मगर वे वहां से हिली तक नहीं। यह देखकर सभी लोग दंग रह गए।

अन्त में कुल्लू वाले पण्डित से ही उन मूर्यियों को उठाने के लिए कहा। उसने हाथ ही लगाया और मूर्ति उठकर उसके हाथ में चली आई।

सभी लोग आश्चर्य में पड़ गए, और कहा, सीता और राम जी कुल्लू जाने के लिए अति प्रसन्न हैं। यह देखकर पिटाई करने वाले सभी युवको ने चोरी करने वाले पण्डित से क्षमा मांगने लगे।

पण्डित जो कुछ समय बाद कुल्लू आ पहुंचे और मूर्तियों को राजा साहब के हवाले किया गया। राजा प्रसन्न हुए और उन्होंने मूर्तियों को लेकर नगर गांव की ओर चल दिया। वहां जाकर मूर्तियों को संत महात्मा की शरण में प्रस्तुत किया।

महात्मा ने राजा से राम की मूर्ति को मणिकर्ण में स्थापित करने को कहा। जबकि सीता की मूर्ति नगर में ही रखी गई।

महात्मा जी का कहना था कि राम और सीता का विवाह राजा के हाथो रचाया जाए तो उनका कुष्ठ रोग समाप्त हो सकता है। वैसे ही किया गया। राजा साहब ने राम के लिए मणिकर्ण में जगह बनाई और फिर मूर्ति लेकर सीता से स्वयंवर रचाने नगर आए। वहां पर संत द्वारा सीता का राम से विवाह किया गया।

राजा साहब के कथनानुसार नगर, सरसेई हलाण और छाकी आदि गांव से दहेज के रूप में धान की फसल दान कर दी गई। सीता की शादी हुई और उसे मणिकर्ण पहुंचाया।

नगर के आसपास के गांव से अभी कुछ ही समय पहले तक उन्हीं दिनों से प्रतिवर्ष मणिकर्ण के लिए धान की फसल भेजी जाती थी मगर अब यह प्रथा तोड़ दी गई है।

मणिकर्ण का ठाकुरद्वारा में विजयदशमी आज भी धूमधाम से मनाई जाती है। कहते हैं कि इस तरह के काम करने के बाद राजा साहब का कुष्ठ रोग मिट गया और वे बिल्कुल ठीक हो गए।

(क्रमशः)

गांव माछंग डा० भेखली
कुल्लू (हि० प्र०)

1. निदेशक, शिक्षा विभाग, हि०प्र० द्वारा पत्राङ्क ई डी ऐन-एच (8)-6(3)1/75, 24 फरवरी, 1975 के अनुसार प्रदेश के समस्त कालेजों, पाठशालाओं व जिला पुस्तकालयों के लिए स्वीकृत।

2. प्रदेश की समस्त पंचायतों के लिए निदेशक, पंचायती राज विभाग, हिमाचल प्रदेश सरकार द्वारा स्वीकृत।

हिमाचल कला-संस्कृति-भाषा अकादमी, पीच व्लाउम काटेज शिमला-2 द्वारा प्रसारित तथा नवीन प्रिंटिंग प्रेस, जिला बिलासपुर (हिमाचल प्रदेश) द्वारा मुद्रित।